चन्दामामा
जनवरी १९७७

Dattaram NP-5B-HINDI

आनन्द, तुमने जो भी चाहा, तुम्हें
मिला है... तुम एक फ़ाइव स्टार
होटल के मालिक हो...

तुम धनवान हो... सभी लोग तुम्हारी
इज़्ज़त करते हैं।

तुम्हारे बच्चे शहर के सबसे
अच्छे स्कूल में पढ़ते हैं।

तुम अपनी बेटी की शादी सबसे
धनी परिवार में कर रहे हो।

लेकिन इतना सब कुछ होते हुए
तुम्हारी आँखों में आँसू क्यों?
तुम्हें जो भी चाहिए, तुम्हारे पास है... है न?

इन्सान के दिल में उठनेवाले विचारों के
चढ़ाव-उतार का चित्रण यानी

मनुष्य के आंतरिक भावों का सुस्पष्ट निरूपण—
अहम् और परितोष के बीच संघर्ष की कहानी।

दिग्दर्शक : के. एस. सेथूमाधवन संवाद : इन्द्र राज आनन्द
गीत : आनन्द बक्षी संगीत : राजेश रोशन

विजया प्रॉडक्शन्स
की अनूठी फ़िल्म

चन्दामामा

संस्थापक : 'चक्रपाणी'
संचालक : नागिरेड्डी

इस महीने की बेताल कथा "माया सुधीर" यह साबित करती है कि साधारणतः लौकिक शक्तियों की अपेक्षा अतीत शक्तियाँ अधिक महत्व की मानी जाती हैं, परंतु यह बात सत्य नहीं है। क्योंकि लौकिक शक्तियों के द्वारा ही जगत के सारे व्यापार या क्रिया-कलाप चलते हैं और ज़िंदगी आगे बढ़ती है, परंतु अलौकिक शक्तियों के द्वारा नहीं। किस देश की जनता अधिक संख्या में मोक्ष की प्राप्ति करती है, इस बात की गणना नहीं होती, परंतु भौतिक रूप से किस देश की जनता आगे बढ़ती है, यही मुख्य है। इसका निर्णय मानवीय शक्तियाँ ही करती हैं।

वर्ष : २९ जनवरी १९७७ अंक : ५

एक प्रति : १-२५ :: वार्षिक चन्दा : १५-००

यस्यार्था स्तत्य मित्राणि,
यस्यार्था स्तस्य बांधवा:,
यस्यार्था स्सपुमान लोके
यस्यार्था स्स च च पंडित: ॥ १ ॥

[धनवान के ही मित्र, धनवान के ही बंधु होते हैं। धनवान ही पुरुष है, धनवान ही पंडित है ।]

यस्यार्था स्स च विक्रांतो
यस्यार्था स्स च बुद्धिमान,
यस्यार्था स्स महाभागो,
यस्यार्था स्स महागुण: ॥ २ ॥

[धनवान ही पराक्रमी और बुद्धिमान है । वही भाग्यवान तथा गुणवान भी है ।]

यस्यार्था धर्म कामार्था:
तस्य सर्वम् प्रदक्षिणम्
अधने नार्थ कामेन
नार्थ श्शक्यो विचिन्वता ॥ ३ ॥

[धनवान को ही धर्म व काम की सिद्धि होती है। धनहीन की कामनाओं की पूर्ति कभी नहीं होती ।]

मित्र-संप्राप्ति

[४२]

सोमिलक अपने गाँव की ओर चल पड़ा। सूर्यास्त के समय उसे वही पुराना बरगद का पेड़ सामने दिखाई दिया। अपनी बुरी हालत पर विचार करते हुए वह चिंता में डूब गया। उस उनींदी हालत में उसने एक सपना देखा।

सपने में उसे वे दोनों व्यक्ति दिखाई दिये। उनमें से एक ने पूछा–"हे कर्ता, तुमने सोमिलक को पाँच सौ सोने के सिक्के क्यों दिये?"

कर्ता ने उत्तर दिया–"हे कर्म, उसकी मेहनत का फल देना मेरा कर्तव्य है; चाहे तो तुम ले लो।" ये बातें सुनते ही सोमिलक ने अपनी थैली में टटोलकर देखा। सिक्कों को न पाकर उसने अपने मन में सोचा–'मेरी यह बेकार की ज़िंदगी ही क्यों? मैं इसी बरगद पर फांसी लगा लूंगा।' इसके बाद वह निकट से दाभ ले आया। एक रस्सा बटकर फांसी का फंदा तैयार किया। उसे वह अपने कंठ में लगाकर कूदने को हुआ। तभी आसमान में एक दिव्य पुरुष ने दर्शन देकर कहा– "सोमिलक! तुम यह अत्याचार मत करो। तुम्हारे सोने के सिक्कों को हड़पने की सलाह देनेवाला कर्ता मैं ही हूँ। मेरे दर्शन कभी व्यर्थ न होंगे। कर्म का सामना करके तुमने जो श्रम किया, उस पर मैं अत्यंत प्रसन्न हूँ। तुम कोई वर माँग लो।"

"तब तो मुझे अपार संपत्ति प्रदान करो।" सोमिलक ने पूछा।

"हे मित्र! तुम्हारी क़िस्मत में केवल खाना और कपड़ा प्राप्त है, ऐसी हालत में तुम अपार संपत्ति का अनुभव कैसे करोगे?" कर्म ने पूछा।

अंतिम पृष्ठ का चित्र

"फिर भी तुम मुझे संपत्ति प्रदान करो।" सोमिलक ने पुनः पूछा।

"अच्छी बात है! तुम फिर बर्द्धमानपुर जाओ। वहां पर धनगुप्त और भुक्तधन नामक दो व्यापारी हैं। तुम उन दोनों की प्रकृति को समझने का प्रयत्न करो, तब बताओ कि तुम उनमें से किसकी भांति अपनी ज़िंदगी बिताना चाहते हो? मैं जरूर तुम्हारी इच्छा की पूर्ति करूँगा।" यों समझाकर दिव्य पुरुष अंतर्धान हो गया।

इसके बाद सोमिलक वर्द्धमानपुर को लौट पड़ा। बड़े ही प्रयास के बाद उसे धनगुप्त के घर का पता चला। क्योंकि धनगुप्त का घर बहुत ही कम लोग जानते थे। क्योंकि वह धान-धर्म, मनोरंजन या अनावश्यक वस्तुओं के ख़रीदने के पीछे एक कौड़ी भी खर्च न करता था।

सोमिलक जाकर धनगुप्त के चबूतरे पर बैठ गया। वह खाने का वक़्त था। धनगुप्त घर के भीतर न था। उसकी पत्नी और बच्चों ने आकर सोमिलक को भगाने की कोशिश की। परंतु सोमिलक ने कहा—"मैं आप का अतिथि हूँ। मुझे खाना खिलाना आप का कर्तव्य है।"

थोड़ी देर तक वाद-विवाद के बाद सोमिलक को बहुत ही निम्न स्तर का खाना खिलाया गया।

सोमिलक थका हुआ था, इसलिए जल्द ही उसे नींद आ गई। सपने में वे दोनों व्यक्ति गुप्त रूप से बात कर रहे थे।

"हे कर्ता, तुमने बेचारे धनगुप्त से खाने का यह खर्चा क्यों कराया? यह तो अनुचित है।" कर्म ने पूछा।

"हे कर्म, यह मेरा दोष नहीं है। इस अतिरिक्त खर्च को भरने की जिम्मेदारी तुम्हारी है।" कर्ता ने जवाब दिया।

सोमिलक ने नींद से जागने पर देखा, धनगुप्त घर लौट आया है। किसी को खाना खिलाने की बात सुनते ही उसका कलेजा कांप उठा। उसे नींद नहीं आई। सवेरे उसे दस्त होने लगे।

इस घटना को देख सोमिलक वहां पर ठहर न पाया। वह भुक्तधन के घर की खोज में चल पड़ा। उसे बड़ी आसानी से भुक्तधन के घर का पता चला; क्योंकि सब लोग उसके घर से परिचित थे।

भुक्तधन ने सोमिलक को द्वार पर देखते ही आदर के साथ उसका स्वागत किया। उसे नहलाकर नये वस्त्र दिये। खाना खिलाकर सोने के लिए बढ़िया इंतजाम किया। सोमिलक सुख की नींद सो रहा था। उसे कर्ता व कर्म की गुप्त बातचीत यों सुनाई दी :

"हे कर्ता! तुमने सोमिलक के आतिथ्य के वास्ते भुक्तधन के द्वारा काफी धन खर्च करवाया। कल के खर्च के लिए उसके हाथ में एक कौड़ी भी नहीं है। उल्टे उसने जो धन खर्च किया है, वह एक व्यापारी का है। उसके कल के खर्च का क्या होगा?" कर्म ने पूछा।

"हे कर्म! कल सवेरे ही राजा के एक कर्मचारी के द्वारा भुक्तधन को अनेक पुरस्कार और पर्याप्त धन प्राप्त होगा। वह अनेक दिन तक अपना खर्च चला सकता है।" कर्ता ने उत्तर दिया।

सोमिलक ने प्रातः काल के होते ही देखा, एक राज कर्मचारी अनेक पुरस्कारों के साथ भुक्तधन के घर पहुंच गया है। इस पर सोमिलक ने मन में सोचा– 'भुक्तधन के पास भारी मात्रा में संपत्ति नहीं है, फिर भी दोनों में से यही उत्तम व्यक्ति है। करोड़ों की संपत्ति रखते हुए भी धनगुप्त नीच है। धन का सच्चा उपयोग इसी में है कि स्वयं उसका उपयोग करे और दूसरों में दान करे।'

यों सोचकर उसने कर्ता से निवेदन किया–"भगवान, मुझे भुक्तधन की संपत्ति जैसी संपदा दो। धनगुप्त का ऐश्वर्य मुझे नहीं चाहिए।"

कर्ता ने सोमिलक को अपार संपत्ति दी। सोमिलक घर लौट आया। दिल खोलकर खर्च करते हुए अपनी पत्नी के साथ सुखपूर्वक अपने दिन बिताने लगा।

१८०. प्राचीन प्राणियों के अवशेष

कई करोड़ों साल पहले पृथ्वी पर राक्षसों के परिमाण के हाथी, छिपकलियाँ, गैंड़े आदि रहा करते थे। कालांतर में उन प्राणियों का अंत हो गया और उनकी अस्थियाँ भूगर्भ में दब गईं। मंगोलिया के कतिपय प्रदेशों में पृथ्वी से छे फुट की गहराई में उन प्राणियों की "फ़ासिल" हड्डियाँ प्राप्त हो रही हैं। ख़ासकर जहाँ पर नदियाँ जमीन को काटती हैं, वहाँ पर नदियों के सूख जाने के बाद पृथ्वी को खोदे बिना ही ये हड्डियाँ मिल रही हैं। इस चित्र में दिखाई देनेवाली फ़ासिल हड्डियाँ राक्षसी गैंड़े की हैं।
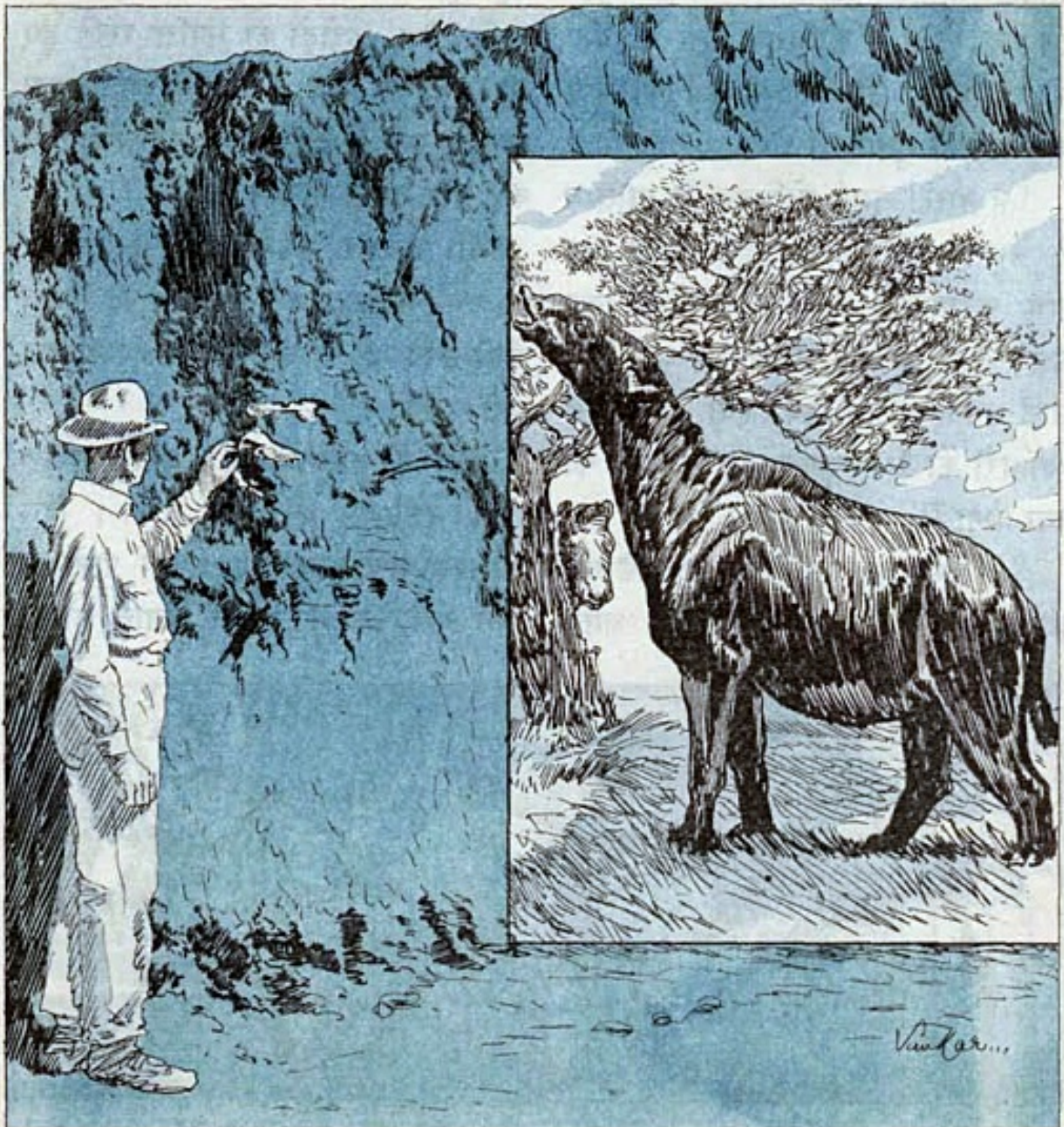
माया सरोवर

[१२]

[घुड़ सवारों द्वारा जयशील को मालूम हुआ कि मंत्री धर्ममित्र पहाड़ी तालाब के निकट डेरा डाले हुए है। वह मकरकेतु को मंत्री के पास ले गया। मकरकेतु यह सोचकर डर गया कि अब उसकी मौत निश्चित है, उसने जलग्रह को पानी पिलाने का बहाना किया और उसे पहाड़ी तालाब में ले जाकर जयशील तथा सिद्ध साधक के साथ जल में डूब गया। बाद–]

जलग्रह अचानक पानी में डूब गया और पानी के तल में तेजी के साथ आगे बढ़ने लगा जिससे जयशील और सिद्ध साधक को पानी पर तिरने का बिलकुल मौक़ा न मिला। दोनों नें सोचा कि जल के भीतर ही उनकी मृत्यु होगी। सिद्ध साधक ने अपनी मौत की आशंका करके अपने आराध्य का स्मरण कर जोर से पुकारा–"जय महाकाल!"

यह पुकार जयशील को स्पष्ट सुनाई दी। उसे अपने आगे बैंठा मकरकेतु भी दिखाई दे रहा था। इसका मतलब है कि पानी के भीतर वह साफ़ देख पा रहा है। ध्वनियों को सुन पा रहा है! यह कैसा आश्चर्य है?

"हाँ जयशील! यह कैसे आश्चर्य की बात है! यह सब महाकाल की कृपा है!" इन शब्दों के साथ सिद्ध साधक ने चारों ओर नज़र दौड़ाई।

उस पहाड़ी तालाब में अनेक जल जंतु उनकी बगल में से तैरते जा रहे थे।

उन में बड़ी-बड़ी मछलियाँ, मगर मच्छ, लंबे सांप-इत्यादि अनेक जल जंतु भी थे। जलग्रह अपना सर उठाये सीधे आगे बढ़ा जा रहा था। सामने एक जगह जल-तल में स्थित एक पहाड़ी गुफा में से पानी तेजी के साथ बह रहा था।

मकरकेतु ने अपने वाहन को सचेत करते हुए पुकारा-"जलग्रह!" तब उनसे बोला-"जयशील, सिद्ध साधक! बोलते क्यों नहीं? क्या सोच रहे हो? अब समझ गये हो न कि जल के अंदर रहते तुम लोगों के जीवित रहने का क्या कारण हो सकता है?"

जयशील ने तलवार खींचकर कहा-"हाँ, समझ गये हैं। तेरे तथा तेरे जलग्रह के साथ लगे रहने पर हम जैसे मानव भी पानी में वायु का सेवन करते जीने की शक्ति रखते हैं।"

"हाँ, हाँ! तुमने ठीक समझा! जयशील! तो फिर तुमने म्यान से तलवार क्यों खींची?" मकरकेतु ने पूछा।

जयशील ने पागल की भांति झट से मकरकेतु का कंधा पकड़ कर झकझोरते हुए कहा-"अरे दुष्ट! यह तुमने क्या किया? हम चाहते तो कभी के तुम्हारे प्राण ले लेते! फिर भी हमने ऐसा नहीं किया। इसके बदले में तुम हमको पानी में डुबोकर मार डालना चाहते हो?"

ये बातें सुन मकरकेतु जोर से हंस पड़ा, फिर कराहते हुए पेट पर हाथ थामे बोला-"जयशील, तुम्हारा मति-भ्रमण तो नहीं हो गया? इस वक़्त हम तालाब में एक ताड़ की गहराई तक के पानी में हैं। क्या साधारण आदमी इतने गहरे जल में सांस ले सकता है! बोल या देख सकता है?"

"तेरा सिर काटने के लिए! सुनो, तुम तुरंत जलग्रह को पानी के ऊपर ले जाओगे या नहीं?" जयशील ने ललकार कर मकरकेतू से पूछा।

सिद्ध साधक अपने हाथ का शूल उठाकर चिल्ला पड़ा—"जय महाकाल की! आज तक ऐसा कोई भक्त न होगा जिसने जल के भीतर तुम्हारे के लिए किसी प्राणी की बलि दी हो! ऐसा बढ़िया मौक़ा मुझे प्रदान करो जयशील!" इन शब्दों के साथ उसने मकरकेतु के कंठ पर अपने शूल को टिका दिया।

मकरकेतु हंसने को हुआ, पर शूल की नोक के चुभने से उसे अपने हाथ से हटा दिया, तब बोला—"महान वीर तथा महाकाल के भक्त का भी शायद मति-भ्रमण हो गया है। मैं किसी भी हालत में जलग्रह को पानी के ऊपर ले जाकर तुम लोगों का बंदी न बनूंगा। तुम्हारी आज्ञा का पालन न करने के एवज में शायद तुम लोग मेरा सर काटोगे। लेकिन इसके तुरंत बाद तुम लोग जल में जीने की शक्ति से वंचित हो जाओगे। चालीस-पचास फुट की गहराई में अब हम लोग हैं। इतनी गहराई में से तुम लोग प्राणों के साथ जल के ऊपर तिर नहीं सकते। तिरनेवाले हैं केवल तुम दोनों के शव!"

जयशील तथा सिद्ध साधक को जब मकरकेतु की बातों की सचाई मालूम हो गई, तब वे यह सोचकर डर गये कि वे

हूँ। लो देखो, उस गुफा की जलधारा से होकर जलग्रह आगे बढ़ेगा और ज्यों ही वह पहाड़ी सरोवर में पहुँचेगा, त्यों ही तुम लोग अपने रास्ते जा सकते हो, मैं भी अपने रास्ते चला जाऊँगा।"

मकरकेतु की बातें पूरी न हो पाई थीं, तभी जलग्रह ने गुफा की धारा में प्रवेश किया। वहाँ पर घना अंधकार था। जयशील जलग्रह से फिसल कर जल में बह न जाय, इस ख्याल से उसने मकरकेतु की कमर कसकर पकड़ लिया। सिद्ध साधक ने भी–"हा महाकाल! तुम्हीं रक्षा करो" चिल्लाते हुए जयशील की कमर कसकर पकड़ लिया।

दोनों उस वक्त मकरकेतु के बन्दी हैं। लेकिन वे कुछ नहीं कर सकते थे। उल्टे जलग्रह पहाड़ी गुफा में से तेजी के साथ बहनेवाली धारा की ओर जा रहा था।

"मकरकेतु! हम दोनों को बंदी बनाकर कहाँ ले जा रहे हो?" जयशील ने पूछा।

मकरकेतु जवाब देने जा रहा था, तभी एक बड़ा मगर मच्छ एक मछली का पीछा करते उनकी ओर आया। जयशील तलवार खींचकर उस पर प्रहार करने जा रहा था. तभी मकरकेतु ने उसकी पूँछ पकड़कर जोर से हिलाया और दूर फेंककर बोला–"जयशील! तुम दोनों मेरे बंदी नहीं हो। मैं भी तुम लोगों का बंदी नहीं

चार-पाँच क्षणों के अंदर ही जलग्रह पहाड़ी सरोवर में पहुँच गया। मकरकेतु का आदेश पाकर वह जल पर तिर आया और अपनी सूंड उठाकर जोर से चींकार कर उठा।

जयशील तथा सिद्ध साधक ने एक बार गहरी साँस ली। प्राणों के साथ तालाब से बाहर निकलने के उपलक्ष्य में प्रसन्नता के साथ चारों ओर देखा। चतुर्दिक ऊँचा पहाड़ और बीच में तालाब का पानी। पानी की एक धारा पहाड़ की दूसरी तरफ़ से तेजी के साथ बहती जा रही है।

इसे देखने पर जयशील के मन में एक शंका हुई। मकरकेतु जब-तब 'सरोवरेश्वर' का नाम लेकर चिल्लाया करता था। क्या वह सरोवर यही तो नहीं! उसका सरोवरेश्वर क्या यहीं पर रहता होगा!

जयशील ने जब यह सवाल पूछा, तब मकरकेतु ने सर हिलाकर कहा—"जयशील, तुम्हारी यह कल्पना गलत है। हमारे राजा सरोवरेश्वर का निवास माया सरोवर यह नहीं है। उसे देखनेवाला कोई भी मानव आज तक प्राणों के साथ उस प्रदेश को छोड़ लौट नहीं आया है।"

"तो क्या तुम हमको वहाँ पर ले जा रहे हो?" जयशील ने पूछा।

मकरकेतु के मुँह से स्वीकार सूचक उत्तर मिलने पर उसकी पीठ में शूल भोंककर मारने के लिए सिद्ध साधक ने अपने शूल का निशाना किया।

मकरकेतु ने सारी बात भांप ली, फिर भी वह विचलित हुए बिना बोला—"तुम दोनों जल्दबाज हो। जंगल में नाहक़ मुझे बंदी बनाकर इस सारी झंझट के तुम लोग कारणभूत बन गये हो! साथ ही मेरी बगल में तलवार पहले ही चुभ गया था, उल्टे तुम लोगों ने उस बहेलिये के द्वारा मेरे कंधे में बाण का प्रहार करवाया। तुम लोग तैरना जानते हो न? यदि न जानते हो तो पहाड़ पर के पेड़ वगैरह पानी की धारा में बहते आ रहे हैं। उनमें से किसी पेड़ की शाखा को पकड़ कर अपने प्राण बचा लो।" ये शब्द कहकर मकरकेतु थोड़ी देर मौन रहा, फिर चिल्ला पड़ा—"जलग्रह!"

जयशील ने होनेवाले खतरे को भांप कर सिद्ध साधक को सावधान लिया। हाथी के जल में डूबते देख दोनों झट से उछल पड़े और तैरते जाकर पानी में बहनेवाले एक वृक्ष को दोनों ने पकड़ लिया। वे पानी में गिरकर उठते हुए पेड़ की शाखाओं पर रेंगने की कोशिश कर रहे थे, तभी पेड़ के तने पर औंधे मुंह लेटे, अगले पैरों से टूटी

शाखाओं को कसनेवाला एक बाघ उन्हें दिखाई दिया।

दोनों की दृष्टि जब बाघ पर पड़ी तभी बाघ ने भी उन्हें देख लिया। बाघ बिजली की तेजी के साथ अपनी पिछली टांगों पर उठ खड़ा हुआ, उच्च स्वर में गर्जन करते निकट ही स्थित सिद्ध साधक पर उछलने की मुद्रा में अपनी पूंछ हिलाने लगा। सिद्ध साधक अपना शूल उठाने को हुआ, जयशील ने उसे रोकते हुए कहा—"सिद्ध साधक! सावधान रहो! यह बाघ भी हमारे जैसे पानी में गिर कर अपनी जान बचाने के लिए इस पेड़ पर आ पहुंचा है। तुमने अगर उस पर शूल का प्रहार किया तो वह तुम पर आक्रमण कर बैठेगा। तेज धारा के साथ तुम दोनों की लड़ाई में अगर पेड़ पानी में डूब गया तो हम जल में समाधिस्थ हो जायेंगे।"

"तुम्हारा कहना तो सत्य है, मगर यह बाघ खीझा हुआ है!" इन शब्दों के साथ सिद्ध साधक ने शूल का निशाना बनाया, बाघ की आँखों में तीव्र दृष्टि डाल कर कहा—"जयशील! मुझे डर लग रहा है कि यदि मैं अपना सिर घुमा लूंगा तो यह बाघ मुझ पर हमला कर बैठेगा। यह ध्वनि सुन रहे हो न। यह धारा कहीं निकट की गहराई में जल प्रपात की भांति गिरती लगती है।"

जयशील भय एवं संभ्रमपूर्ण स्वर में बोला—"सिद्ध साधक! हम जल प्रपात की धारा में फंसकर इतनी ऊँचाई से किसी गहराई में गिरने जा रहे हैं; बस, अब सिर्फ़ दो-तीन सौ गज की दूरी है।"

सिद्ध साधक भय विह्वल हो बोला—"अगर हम नीचे गिरकर चूर-चूर होने के पहले ही इस पेड़ को छोड़ दे तो?"

"पेड़ के सहारे हमारे प्राण बचाने का मौक़ा है। उसे मत छोड़ो।" जयशील ने समझाया।

उसी समय बाघ गरज कर सिद्ध साधक पर आक्रमण करने को हुआ। तब तक

धारा का वेग तीव्र हो गया। पेड़ 'जुयें' आवाज़ के साथ जल प्रपात में फंस गया और लगभग दो सौ फुट ऊँचाई से धारा के साथ नीचे के प्रवाह में गिर पड़ा।

जब पेड़ पानी में डूबते-तिरते जल प्रपात के साथ नीचे गिरने लगा, तब सिद्ध साधक तथा जयशील ने आँखें मूंदकर सोचा कि ये उनके अंतिम क्षण हैं। जल प्रपात जहाँ नीचे गिरता था, वहाँ पर छोटी-बड़ी अनेक शिलाएँ थीं। पेड़ का मध्य भाग एक बड़ी शिला पर गिरकर दो भागों में टूट गया। एक भाग पर जयशील था और दूसरे पर सिद्ध साधक तथा बाघ थे।

थोड़ी देर बाद जयशील ने आँखें खोल कर देखा। वह जल के किनारे पर था। कमर के नीचे का भाग जल में भीग रहा था। सिर ऊँचाई पर था। दूर पर जल प्रपात की ध्वनि सुनाई दे रही थी।

जयशील ने यह सोचते करवट बदल डाली—"अरे मैं तो अभी ज़िंदा हूँ। मेरे हाथ-पैर सही हालत में हैं या टूट गये हैं?" उसकी दायीं कोहनी पर मोच आ गई थी। उसने धीरे से पैर हिला कर देखा, थोड़ी पीड़ा प्रतीत हुई।

"मैं तो भाग्यवान हूँ। इतनी बड़ी ऊँचाई से गिरकर बच रहा और मेरे हाथ-पैर भी टूटे नहीं।" यों सोचते जयशील उठ खड़ा हुआ। हाथ-पैरों में हुए छोटे-

मोटे घावों की ओर एक बार दृष्टि डाली। म्यान में स्थित अपनी तलवार को उसने संभाला। तभी उसे अचानक सिद्ध साधक की याद आ गई। वह तेजी के साथ धारा की ओर बढ़ा।

धारा के बीच जहाँ-तहाँ छोटी-बड़ी शिलाएँ थीं। जयशील जल प्रपात में जिस पेड़ के साथ गिरा था, वह दो बड़ी शिलाओं के बीच बुरी तरह से फंस गया था। उसके नीचे थोड़ी दूर पर दूसरा भाग किनारे लगा था। मगर उसे सिद्ध साधक कहीं दिखाई नहीं दिया।

"बेचारा सिद्ध साधक अभागा है! जल प्रपात में से नीचे गिरते किसी शिला से टकरा कर मर गया होगा। उसकी लाश नदी के प्रवाह के साथ बह गई होगी!" जयशील ने अपने मन में सोचा।

दूसरे ही क्षण उसके मन में अनेक दिनों से अपनी कठिनाइयों में साथ देनेवाले सिद्ध साधक के प्रति दया उत्पन्न हुई। इस पर जयशील ने सोचा कि साधक की लाश पानी में सड़कर मगर मच्छों का आहार बनने के पूर्व ही उसे खोज-ढूँढ़कर उसका उचित रूप में दाह-संस्कार करना चाहिए।

इसके दूसरे ही क्षण वह उठ खड़ा हुआ नदी के तट पर फैली झाड़-झंखाड़ों के बीच अपना रास्ता बनाते हुए थोड़ी दूर आगे बढ़ा ही था कि अचानक उसे बाघ का गर्जन सुनाई दिया। उसी समय उसे अपने साथ जल प्रपात में फंसे बाघ की याद ताजा हो उठी।

"सिद्ध साधक कहीं बाघ का आहार तो बन नहीं गया?" यों सोचते जयशील ने चट से म्यान में से तलवार निकाली और उस ध्वनि की दिशा में क़दम बढ़ाये।

एक स्थान पर सिद्ध साधक पानी के किनारे अचेत पड़ा हुआ था। शिलाओं पर गिरने से अपने दोनों पिछली टाँगों को तुड़वाया हुआ बाघ गरजते आगे की टांगों के सहारे रेंगते साधक की ओर बढ़ रहा था। (और है)

माया सुधीर

हठी विक्रमार्क पेड़ के पास लौट आया। पेड़ से शव उतारकर कंधे पर डाल सदा की भाँति चुपचाप श्मशान की ओर चलने लगा। तब शव में स्थित बेताल ने कहा–"राजन, अगर तुम यह समझो कि तुम्हारी इच्छा की पूर्ति न होने का कारण तुम्हें मानवातीत शक्तियाँ प्राप्त नहीं हैं तो यह तुम्हारा भ्रम ही होगा। अतीत शक्तियों के होते हुए भी कभी कभी आशयों की सिद्धि नहीं होती! इसके उदाहरण के रूप में मैं तुम्हें मैत्रेय की कहानी सुनाता हूँ। श्रम को भुलाने को सावधानी से सुनो।"

बेताल यों कहने लगा: बात बहुत ही पुरानी है। उज्जयिनी नगर में सुधीर नामक राजा शासन करता था। उसके दरबार में कनकदास नामक बड़ा शिल्पी था। उसके मैत्रेय नामक एक छोटा भाई

बेताल कथाएँ

था । मैत्रेय कई साल तक हिमालयों में घूमता रहा । सिद्ध योगियों की सेवा करके उसने एक अद्भुत शक्ति प्राप्त की । उस शक्ति के द्वारा वह शिल्प में प्राण फूंक सकता था ।

मैत्रेय ने राजदरबार में अपनी इस अद्भुत शक्ति का प्रदर्शन करना चाहा । उसने अपने भाई के द्वारा दो नारी मूर्तियाँ गढ़वाईं । भरे दरबार में इन नारी मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा की । इसे देख राजा के साथ राज दरबारी भी विस्मय में आ गये । राजा ने सुधीर को अपने दरबारी नियुक्त किया । सुधीर ने भी इसे सहर्ष स्वीकार कर लिया ।

कालांतर में सुधीर तथा मैत्रेय के बीच गहरी दोस्ती हुई । एक बार सुधीर के मन में अपनी प्रति मूर्ति को सजीव देखने की इच्छा पैदा हुई । उसने अपनी यह इच्छा सुधीर के सामने रखी । मैत्रेय ने भी राजा सुधीर की इच्छा की पूर्ति करने की सम्मति दी ।

मैत्रेय ने अपने भाई कनकदास के द्वारा सुधीर की एक सुंदर शिला प्रतिमा तैयार करवाई । अपने ही घर में उस प्रतिमा में प्राण-प्रतिष्ठा करके आधी रात के वक़्त उस माया सुधीर को साथ ले राजमहल की ओर चल पड़ा ।

अन्य राजधानियों की भाँति उज्जयिनी में भी शत्रु राजाओं के गुप्तचर फैले हुए थे । उन गुप्तचरों ने माया सुधीर को ही वास्तविक राजा समझा और अचानक उसपर आक्रमण करके मार डाला । तब वे भाग गये । सवेरे तक राजधानी में यह खबर फैल गई कि किसी ने राजा की हत्या की है ।

प्रात:काल यह घोषणा की गई कि हत्या माया सुधीर की की गई, असली राजा जीवित है । इस पर जनता भी प्रसन्न हो उठी । मगर राज्य की दुष्ट शक्तियों ने प्रचार करना प्रारंभ किया कि हत्या तो असली राजा की हुई है और राजगद्दी

पर बैठा हुआ व्यक्ति माया सुधीर है। उस माया सुधीर के आश्रय में रहते मैत्रेय ही शासन कर रहा है। राजा तथा मैत्रेय के बीच गहरी मित्रता थी, इस कारण जनता को यह अफ़वाह विश्वास करने योग्य प्रतीत हुई।

साधारण प्रजा का इस अफ़वाह पर विश्वास करने में कोई आश्चर्य की बात नहीं है। मगर अंत:पुर की रानियों से लेकर दास-दासियों तक सभी लोग इस शंका के मारे दिन-रात परेशान रहने लगे कि कहीं यही सुधीर माया सुधीर तो नहीं है।

अपनी इस स्थिति पर सुधीर भी दुखी हुआ। इस समस्या का कोई हल राजा को नहीं सूझा। इसलिए उसने मैत्रेय से कहा कि इसका कोई हल ढूंढ़ निकाले। मैत्रेय भी इस संबंध में सोचता रहा, आखिर उसे एक उपाय सूझ पड़ा।

मैत्रेय ने अपने भाई के द्वारा अपनी ही आकृति की एक मूर्ति तैयार करवाई। उसमें प्राण फूंक दिया। तब उस नकली मैत्रेय को साथ ले एक दिन रात को गुप्त रूप से वह राजा की सेवा में पहुंचा।

राजा सुधीर दो मैत्रेयों को एक साथ अपने सामने देख चकित रह गया। उसने आश्चर्य के साथ पूछा—"मैं समझ नहीं पा रहा हूं, तुम में से असली मैत्रेय कौन है? जल्दी बता दो।"

"महाराज! मैं असली मैत्रेय हूं। यह नकली मैत्रेय है! आप भरे दरबार में इस नकली मैत्रेय पर राजद्रोह का अभियोग लगाकर इसे फाँसी पर चढ़ा दीजिए! हमारी समस्या हल हो जाएगी।" असली मैत्रेय ने सुझाया।

"तो फिर तुम क्या करोगे?" राजा सुधीर ने पूछा।

"मैं सब की आंख बचाकर हिमालयों में जाऊँगा और वहाँ पर मैं अपना शेष जीवन अज्ञात रूप में बिताऊँगा। आप के प्रति जनता में जो संदेह पैदा हो गया,

वह इस प्रकार जाता रहेगा ।" मैत्रेय ने अपनी युक्ति बताई ।

उसी रात को मैत्रेय राजा की आज्ञा लेकर हिमालयों में चला गया । दूसरे दिन राजा सुधीर ने सभी दरबारियों के समक्ष नकली मैत्रेय को राजद्रोही ठहराकर फाँसी की सजा सुनाई । नकली मैत्रेय को फाँसी पर चढ़ाते वक़्त उस दृश्य को देखने के लिए हजारों की संख्या में लोग वधस्थान पर पहुँचे । तब जाकर सब के मन में यह विश्वास जम गया कि राजा कहलाने वाला सुधीर माया सुधीर नहीं है, बल्कि असली सुधीर है ।

बेताल ने यह कहानी सुनाकर कहा– "राजन, यह मानने में कोई संदेह नहीं है कि मैत्रेय ने जो कार्य किया, वह सही है । मगर उसके भीतर की अतीत शक्तियों का इस प्रकार दुष्परिणाम पैदा करने तथा अंत में उसका हिमालयों में नीरस जीवन बिताने के लिए बाध्य होने का क्या कारण है? इस संदेह का समाधान जानते हुए भी न दोगे, तो तुम्हारा सिर टुकड़े-टुकड़े हो जाएगा ।"

इस पर विक्रमार्क ने यों उत्तर दिया– "कोई यह बता नहीं सकता कि अलौकिक शक्तियाँ लौकिक जीवन के लिए कैसे उपयोगी बन सकती हैं । उनके परिणामों पर मानवों का कोई अधिकार नहीं होता । मूर्तियों में प्राण-प्रतिष्ठा करना मात्र जानने वाला मैत्रेय लौकिक जीवन में भी प्रसिद्धि पाने की योग्यता रखता है, यह कोई कह नही सकता । उसे अज्ञात जीवन को छोड़ दूसरे प्रकार का जीवन उपलब्ध नहीं हो सकता । यह बात उसकी असाधारण शक्ति के पीछे तत्काल स्पष्ट हो न पाई । उस शक्ति के द्वारा दुष्परिणाम पैदा होने के बाद ही यह बात स्पष्ट हो पाई । इसलिए मैत्रेय का हिमालयों में जाना सर्वथा उचित और स्वाभाविक है ।"

राजा के इस प्रकार मौन भंग होते ही बेताल शव के साथ गायब हो पेड़ पर जा बैठा । (कल्पित)
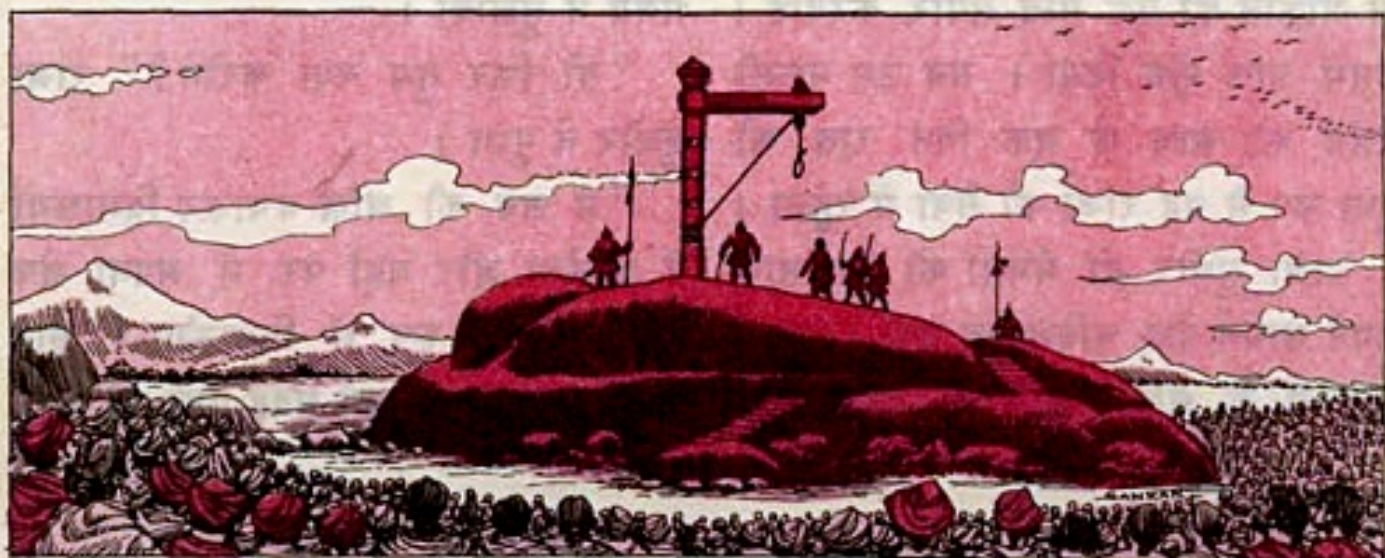
सबसे प्रिय वस्तु

इंद्रसेन नगर पर राजा चन्द्रसेन शासन करता था। उसके दरबार में शिवशर्मा नामक एक कवि रहा करता था।

उस राज्य में नव रात्रियों का उत्सव वैभवपूर्वक मनाया जाता था। उन दिनों में अनेक देशों से कवि, गायक तथा अन्य कलाकार इंद्रसेन नगर में आते, अपनी कला और पांडित्य का प्रदर्शन करके सम्मानित हुआ करते थे। एक वर्ष अनेकों के सम्मान के साथ शिवशर्मा का भी अभिनंदन किया गया।

इसके उपरांत ब्राह्मणों को भोज दिया गया। साथ ही उन्हें छोटे-मोटे इनाम भी दिये जा रहे थे। शिवशर्मा भी वहाँ पहुँचा। वहाँ पर भारी भीड़ थी। ब्राह्मणों को नियंत्रण में रखना राजभटों के लिए भी मुमकिन न था। उस भगदड़ में शिवशर्मा का पैर फिसलने के कारण वह नीचे गिर पड़ा। उसके कपड़े कीचड़ में सन गये।

राजमहल के ऊपर से राजा ने उस दृश्य को देखा। शिवशर्मा को बुलवाकर कारण पूछा। इस पर शिवशर्मा ने यह श्लोक सुनाया:

"क्षुत्तृडाशाः कुटुंबिन्यो मयि जीवति नान्यगाः,
तासा मंत्या प्रियतमा, तस्या श्रृंगार चेष्टितम् ॥"

(मेरे भूख, प्यास और आशा नामक तीन पत्नियाँ हैं। उनमें तीसरी नारी मेरेलिए अत्यंत प्रिय है। यह तो केवल उसकी श्रृंगार चेष्टा है।)
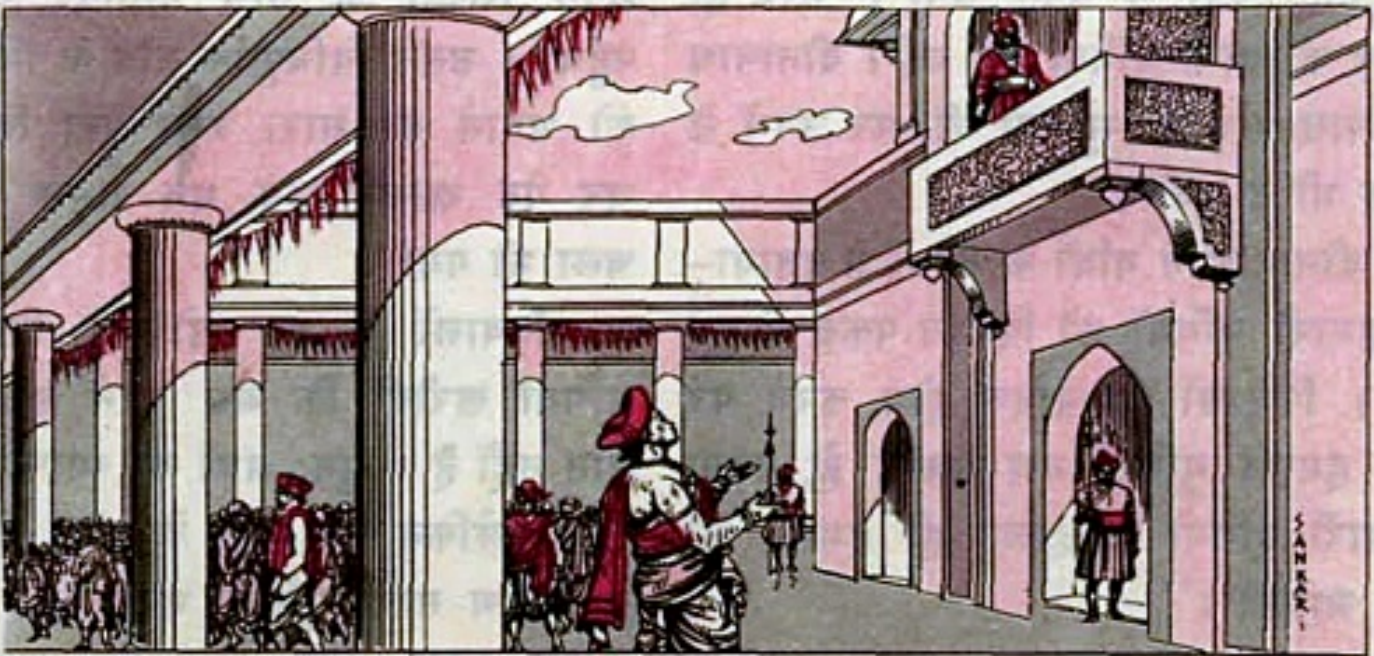
अंडों का व्यापार

गीतापुर अंडों के लिए अत्यंत प्रसिद्ध था । उस गाँव के किसान खेतीबारी के साथ मुर्गी पालन भी करके अतिरिक्त आमदनी करते थे और वहाँ के अण्डे आकार में बड़े तथा स्वादिष्ट भी होते थे । इस कारण उनके अच्छे दाम मिल जाते थे ।

मगर उस गाँव की मुर्गियाँ अचानक अधिक संख्या में मरने लगीं । जल्द ही गाँव की सारी मुर्गियाँ मर गईं । दीनानाथ के पास पाँच सौ मुर्गियाँ थीं, पर उनमें से एक भी न बची ।

दीनानाथ ने गाँवों के लोगों से बताया— "हमारी मुर्गियों को पिशाच पकड़ ले गये हैं । पिशाचों का मारण होम करने पर ही हमारी मुर्गियाँ बच सकती हैं; वरना हमारी मुर्गियों की हालत ही हमारी भी हो जाएगी ।"

यह बात अन्य किसानों को उचित प्रतीत हुई । पड़ोसी गाँव में एक ओझा रहा करता था । वह मंत्र फूँककर पिशाचों को भगाने में विशेष मशहूर था । इस कारण गाँववालों ने चन्दा वसूल करके ओझा को बुलवाकर पिशाचों का पिंड छुड़ाने का निर्णय किया ।

शनीचर के दिन की शाम को ओझा अपने शिष्यों के साथ गीतापुर में आ पहुँचा । उसने विधिपूर्वक गाँव के पिशाचों को भगाने का सारा रस्म पूरा किया । भर पेट खाकर खूब धन वसूल करके चला भी गया ।

गाँववालों ने यह सोचकर फिर से मुर्गियाँ खरीदीं कि अब डरने की कोई बात नहीं है । पुनः अंडों का व्यापार शुरू किया, लेकिन एक हफ़्ते के अंदर बीमारी के कारण सारी मुर्गियाँ मरकर रह गईं ।

ए. सी. सरकार, जादूगर

इस पर दीनानाथ ने अन्य किसानों को समझाया—"भाइयो, हमारे लिए मुर्गियों का यह व्यापार ही क्यों? हम तो पेशे से किसान ठहरें। आज से हम लोग सिर्फ़ अपनी खेतीबारी पर ज़्यादा ध्यान देंगे। हमें कोई शाप लग गया है।"

उस दिन से गीतापुर में नाम मात्र के लिए भी अण्डों का मिलना दूभर हो गया। किसान अपने विराम का समय बेकार काटने लगे।

गीतापुर के एक जमींदार का पुत्र शंकर उसी समय छुट्टियों में घर लौटा। पिछली बार जब वह छुट्टी पर आया था, तब हर जून उसे खाने में अण्डे परोसे गये थे। इस बार तीन दिन बीतने पर भी उसे एक भी जून अण्डा परोसा नहीं गया। इस पर उसे बड़ा आश्चर्य हुआ।

शंकर ने अपनी माँ से इसका कारण पूछा। उसने शंकर को गाँव की सारी कहानी कह सुनाई। शंकर जानता था कि अण्डों का व्यापार गाँववालों के लिए कैसे लाभदायक था। उसने अपने मन में यह दृढ़ निश्चय कर लिया कि किसी भी प्रकार से सही गाँव में पुनः अण्डों का व्यापार शुरू करवाना है। पहले से ही देश में अन्न की कमी है। माँस की बात तो कहने की जरूरत ही नहीं थी। इस कारण अन्न के उत्पादन में मंदता नहीं आनी चाहिए।
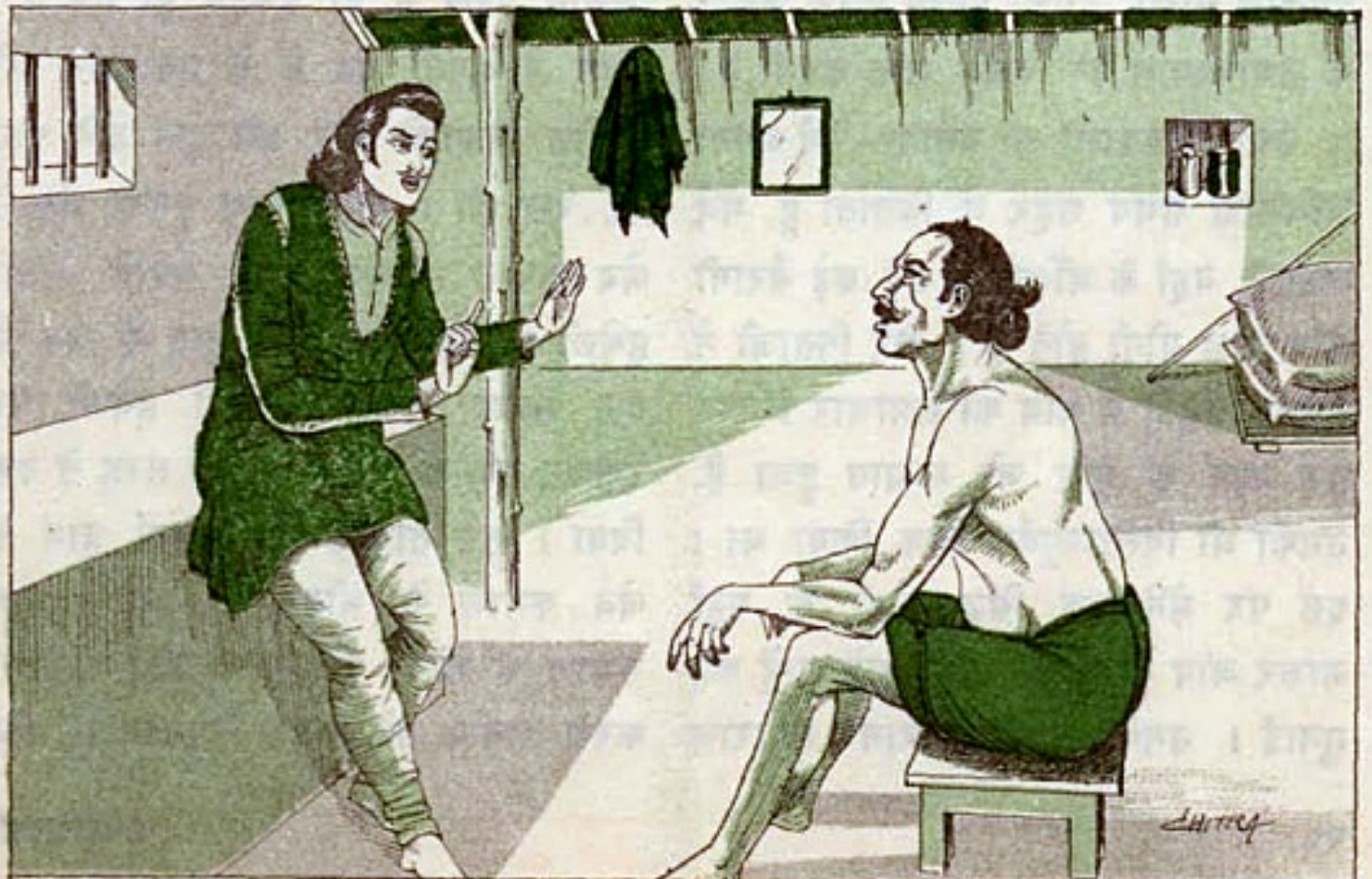
इस विचार के आते ही शंकर ने निश्चय कर लिया कि शहर में रहते उसने जो इंद्रजाल सीखा, उसका प्रयोग करके जनता के अंधविश्वास पर विजय प्राप्त करनी है।

उसने गाँववालों को बताया–"मैं अपना अधिकांश समय शहर में बिताता हूँ, मैंने देखा है, वहाँ के मंदिरों में बड़े बड़े बैरागी और सिद्ध योगी होते हैं। मेरे पिताजी ने अपनी चिट्ठी में गाँव का समाचार लिखते हुए आप के प्रति जो अन्याय हुआ है, उसका भी विस्तारपूर्वक ज़िक्र किया था। इस पर मैंने एक सिद्ध योगी के यहाँ जाकर आप लोगों की सारी बातें उन्हें कह सुनाईं। उनका नाम गंभीरानंद महाराज है। उन्होंने मुझे एक ताबीज दी और बताया कि अण्डों पर उसका गहरा प्रभाव होता है। चाहे तो आप लोग भी उसका प्रभाव खुद देख सकते हैं। आप लोगों को विश्वास दिलाने के लिए मैं खुद मुर्गियों का व्यापार शुरू करूँगा और यह साबित कर दिखा दूँगा कि शाप से हम लोग कैसे बच सकते हैं। आप लोग बताइए कि मैं तावीज का प्रभाव कब दिखा दूँ?"

इस पर दीनानाथ ने कहा–"कल दुपहर के बाद मेरे ही घर दिखा दो। मैं सब किसानों को उसे देखने के लिए यहीं पर बुलवा लूँगा।"

दूसरे दिन दुपहर के बाद शंकर दीनानाथ के घर गया। वहाँ पर अनेक किसान पहले से ही इकट्ठे हो गये थे। शंकर ने अपनी जेब में से एक तांबे की तावीज़ निकाली और उसे एक ऊँचे पीठ पर रख दी। इसके बाद दूसरी जेब से जेब रूमाल निकाला, उसे अपनी बायीं हथेली पर बिछाकर दायें हाथ से जेब से एक अण्डा निकाला, बायीं हथेली पर रखकर रूमाल से उसे अच्छी तरह से ढक दिया। तब तावीज़ लेकर दायें हाथ से जेब रूमाल के भीतर ले गया। जेब रूमाल के भीतर ही भीतर कोई करिश्मा करके तावीज को बाहर निकाला। थोड़े

क्षण बाद जेब रूमाल के छोरों को हटाया। उसके बायें हाथ में दो अण्डे दिखाई दिये। इसे देख ग्रामवासी चकित रह गये।

शंकर ने अपनी इस क्रिया के बाद दोनों अण्डों को जेब रूमाल में लपेटकर अपनी जेब में रख लिया। तावीज़ को आँखों से लगाकर लाल धागे से अपनी बाँह पर बांध लिया।

दूसरे दिन शहर में जाकर शंकर ने सरकारी मवेशी शाखा के अधिकारियों से बात की। मुर्गी के विशेषज्ञों की सलाह व सहयोग से मुर्गी-पालन संबंधी पुस्तकें, दवाएँ तथा सुइयाँ भी खरीद लीं। सुई लगाने का तरीक़ा भी उसने अच्छी तरह से सीख लिया। दो दिन के अन्दर उसने मुर्गीपालन संबंधी कई बातें जान लीं, साथ ही दीनानाथ के घर प्रदर्शन देने के पूर्व ही अण्डों को दुगुना बनाने की युक्ति भी जान ली थी।

शंकर ने एक बड़े अण्डे की खोल प्राप्त कर उसके दो समान भाग किये। आधी खोल में छोटी मुर्गी का अंडा आसानी से अट जाता है। उसका उपयोग खोल के भीतर बिठाये गये अंडे का प्रदर्शन के समय किया। शंकर ने प्रेक्षकों को अण्डे की खोल का ऊपरी भाग मात्र दिखाया और जेब रूमाल की आड़ में से छोटे अंडे को बड़े अण्डे की खोल से अलग कर दिया। थोड़ी दूर से देखनेवालों को अंडे की खोल
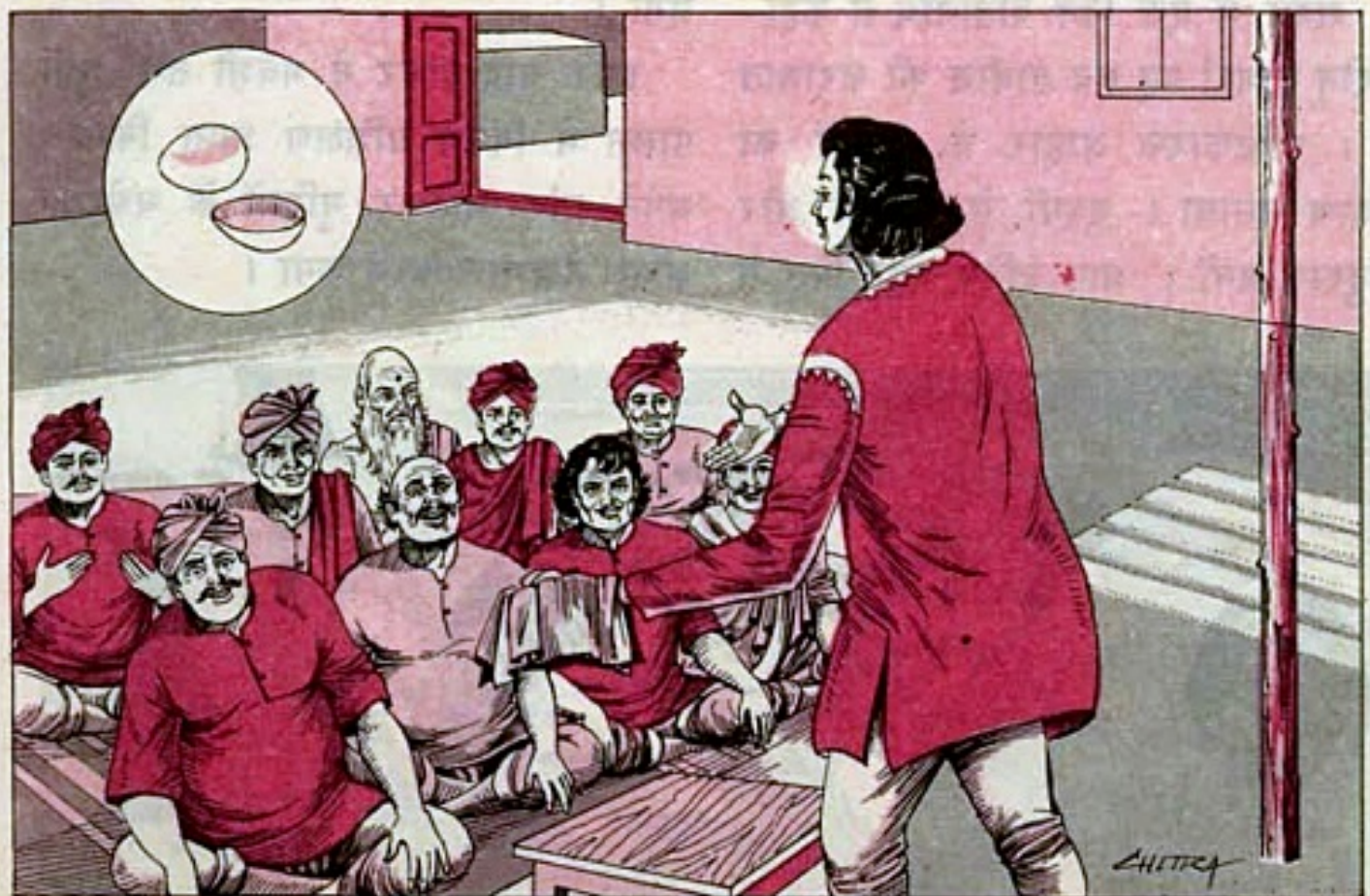
भी बिलकुल पूरे अण्डे जैसे ही दिखाई दिया।

इस प्रकार अपने इंद्रजाल की सफलता के बाद शंकर ने अपने गाँव में बहुत बड़ा परिवर्तन लाने के ख्याल से दूसरा कार्यक्रम अपने हाथ में लिया। उसने मुर्गियाँ खरीदकर पालना शुरू किया। सरकार की तरफ़ से प्राप्त होनेवाले उत्तम किस्म का आहार उन्हें खिलाया। मुर्गियाँ खूब बढ़ीं। छुतहरी बीमारियों के फैलने से उन्हें बचाने के लिए सुइयाँ लगाईं। मुर्गियों ने बड़े बड़े अण्डे दिये, इसके बाद एक भी मुर्गी नहीं मरी। गाँववाले रोज आकर शंकर की मुर्गियों को देख जाते थे। तीन सप्ताह के अंदर शंकर का व्यापार ज़ोरों से चलने लगा।

शंकर ने एक दिन दीनानाथ से कहा—"दीनू मामा! यह सब तावीज की करामात है। पुष्टिकारक आहार ने मुर्गियों को स्वस्थ बनाया। सुइयों से मुर्गियाँ और तंदुरुस्त बनीं। आप डरिये नहीं, फिर से मुर्गियों का व्यापार शुरू करके गीतापुर के अण्डों को बाजार में बेचने के लिए भेज दीजिए। मैं सिद्ध योगी से माँगकर और तावीज़ ला दूँगा। मैं जब तक यहाँ हूँ, मेरी तावीज़ तो है ही। मैं प्रति दिन आप सब लोगों के घर जाकर मुर्गियों की रक्षा करूँगा।"

शंकर से प्रोत्साहन पाकर किसानों ने फिर से मुर्गियाँ खरीद लीं। शंकर ने उनके वास्ते आहार तथा दवाइयों का उचित इंतजाम किया। मुर्गियाँ तेजी के साथ खूब बढ़ीं। बड़े बड़े अण्डे दिये। शंकर ने ही उन्हें सुइयाँ लगाईं। इसके बाद फिर से गीतापुर के अण्डे बाजार में अधिक संख्या में बिकने लगे। पहले की अपेक्षा किसानों की अच्छी आमदनी होने लगी।

इसके बाद शंकर ने मवेशी तथा मुर्गी पालन में विशेष प्रशिक्षण प्राप्त किया। अपने गाँव लौटकर मुर्गियों के धंधे की अच्छी देखभाल करने लगा।

जीने का राज

राजा चन्द्रवर्मा के शासन काल में धर्मदास नामक एक पहरेदार राज सभा का पहरा दिया करता था। एक दिन राजा ने सभा भवन में प्रवेश करते हुए धर्मदास से कहा–"लगता है, तुम अकेले के लिए ज़्यादा काम है। तुम्हारी मदद के लिए एक और पहरेदार को नियुक्त करूँगा।"

"महाराज, मैं अकेले यह काम संभाल लूँगा।" धर्मदास ने जवाब दिया।

धर्मदास का दूसरे पहरेदार की नियुक्ति को मना करने का एक कारण था। राजा के दर्शन करने आनेवालों से धर्मदास बख्शीश वसूल किया करता था। उसकी मदद के लिए यदि दूसरे पहरेदार आएगा तो वह बख्शीश में हिस्सा माँग सकता है या राजा से उसकी शिकायत कर सकता है।

आखिर धर्मदास की मदद के लिए दूसरा पहरेदार आ पहुँचा। राजा के दर्शन करने आनेवालों को धर्मदास अलग ले जाता और उनसे बख्शीश वसूल करता था। इसे देख दूसरे पहरेदार ने धर्मदास को धमकी दी कि वह राजा से इस बात की शिकायत करेगा। धर्मदास ने अपनी कमाई में से हिस्सा देने का लोभ दिखाया, पर दूसरे पहरेदार ने न माना।

धर्मदास को जब यह बात स्पष्ट हो गई कि दूसरा पहरेदार उसे सहयोग नहीं देगा, तब उसने दर्शनार्थियों से कहा–"सुनिये, साहब! यह राजा से शिकायत करना चाहता है कि मैंने आप लोगों से बख्शीश लिया है। मैं ही खुद राजा से शिकायत करूँगा कि इसने आप लोगों से बख्शीश माँगा है। आप गवाह रहेंगे न?"

धर्मदास उस नौकरी में बीस साल से लगा हुआ है। उल्टे बख्शीश लेने पर भी वह सबके काम किसी न किसी प्रकार

विनोद गुप्त

बात जान ली और धर्मदास को घंटी बजाने का काम सौंप दिया।

राजा की कचहरी में अफ़सरों तथा कर्मचारियों से मिलकर धर्मदास ने निवेदन किया कि वह कार्यालय के समय को घटाने का प्रयत्न करेगा, इसके बदले में उसे थोड़ी-बहुत आर्थिक सहायता पहुँचाई जाय! जिन अफसरों के जिम्मे कार्य का अधिक बोझ था, उन लोगों ने धर्मदास के सुझाव को मान लिया और दूसरों को भी मनवा लिया। उस दिन से कार्यालय का समय घट गया। सूर्यास्त के पहले ही कार्यालय बंद होने लगा।

करवा देता था। यदि वह दरबार में न रहा तो उनकी ज़रूरतों को संपन्न कर सकनेवाला दूसरा व्यक्ति शायद न मिले। इस विचार से राजा के दर्शन करने आये हुए लोगों ने धर्मदास की ओर से गवाही देने को मान लिया। इससे दूसरे पहरेदार का मुंह बंद हो गया, साथ ही उसके प्रति राजा से शिकायत करने से बचने के लिए उसे अपनी तनख्वाह का पाँचवाँ हिस्सा धर्मदास को देना पड़ा।

दो महीने बीत गये। दूसरे पहरेदार की पत्नी ने राजा से शिकायत की कि उसका पति पूरी तनख्वाह घर में नहीं दे रहा है। राजा ने सुनवाई करके असली

कई महीने बीत गये। धर्मदास धीरे-धीरे धनवान बनता गया। उसने नगर के बीच एक सुंदर स्थान पर जमीन खरीद ली और बड़ा महल बनवा लिया।

एक दिन राजा से रानी ने बातचीत के सिलसिले में बताया कि दिन का समय जल्दी बीत रहा है, शाम का वक़्त शीघ्र बीत नहीं रहा है। यह तो कुछ गड़बड़ मालूम होता है। राजा चन्द्रवर्मा को भी ऐसा ही प्रतीत हुआ। इसलिए दूसरे दिन वह अपने अंतःपुर की रेतीली घड़ी के पास ताक लगाये बैठा रहा।

धर्मदास कार्यालय के प्रारंभ का समय तक जो घंटी बजाता था, वह घड़ी के समय

के मुताबिक़ ठीक ही था । पर इसके बाद रेतीली घड़ी का एक घंटा पूरा होने के पहले ही धर्मदास घंटियाँ बजाता जा रहा था । शाम के वक़्त कार्यालय का समय समाप्त होने तक एक घंटे का फ़रक दिखाई दिया ।

यह बात मालूम होने पर राजा ने धर्मदास को दरबार में बुला भेजा, सुनवाई करके यह साबित किया कि वह राज कर्मचारियों से बख़्शीश वसूल कर रहा है । मगर राजा को यह पसंद न था कि अनेक वर्षों से काम करनेवाले धर्मदास को नौकरी से अचानक हटा दे । उसने सोचा कि धर्मदास को किसी सख़्त अफ़सर के अधीन नियुक्त कर दिया जाय तो उसकी दाल नहीं गलेगी ।

राजा के यहाँ जो सेनाध्यक्ष था, वह कठोर स्वभाव का था । इसलिए राजा ने धर्मदास को सेनाध्यक्ष का नौकर नियुक्त किया । यह नई नौकरी ईमानदारी के साथ करते हुए धर्मदास सावधान रहने लगा ।

एक दिन संध्या को धर्मदास सेनाध्यक्ष के बगीचे में पौधों को पानी दे रहा था । बगीचे की तरफ के कमरे में सेनाध्यक्ष और उसकी पत्नी कोई बातचीत कर रहे थे । धीरे धीरे उनके बीच बात बढ़ी और झगड़ने लगे । धर्मदास झट खिड़की की आड़ में जा पहुँचा और उनकी बातचीत सुनने लगा । सेनाध्यक्ष घर के बाहर तो शेर था, मगर बीबी के आगे वह बिल्ली बन जाता था । उसकी पत्नी ने गुस्से में आकर उस पर कोई चीज़ फेंक दी ।
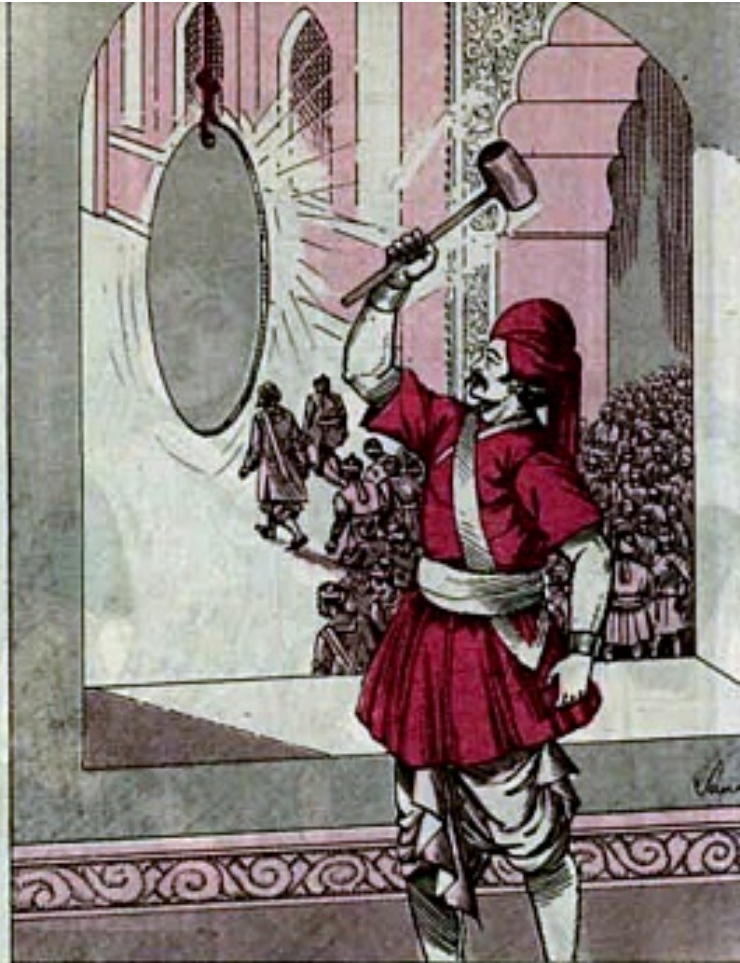
सेनाध्यक्ष ने यह सोचकर खिड़की में से इधर-उधर झांककर देखा कि कहीं कोई इसे देख तो नहीं रहा है । सामने धर्मदास बड़े ही कुतूहल के साथ उस दृश्य को देख रहा था । सेनाध्यक्ष का सर अपमान से झुक गया । वह अपनी पत्नी को तो डांट न पाया, पर बगीचे में प्रवेश करके धर्मदास को डाँटना चाहा ।

मगर धर्मदास खीझ भरे स्वर में बोला–"सरकार! चाहे आप अपनी पत्नी

इस कारण उस बात को छिपाने के लिए सेनाध्यक्ष को धर्मदास को बख्शीश देना ही पड़ा। जब-तब वह सेनाध्यक्ष की पत्नी के यहाँ से भी बख्शीश लिया करता था। लेकिन धीरे-धीरे यह खबर फैलती गई कि शेर जैसा सेनाध्यक्ष अपनी पत्नी के सामने बिल्ली बन बैठा है, आखिर यह खबर राजा के कानों में भी पड़ गई।

राजा तो पहले आश्चर्य में आ गया। बाद को धर्मदास के द्वारा असली बात जान ली। धर्मदास ने गुप्त रूप से एक अधिकारी के घर की बातचीत ही नहीं सुनी बल्कि उसे सताया भी, इस अपराध पर उसे नौकरी से हटाया। तब तक धर्मदास ने काफी धन कमा रखा था, इस कारण अपनी नौकरी खोने पर वह ज्यादा चिंतित नहीं हुआ।

इसके बाद धर्मदास ने चार बेकार युवकों को अपने यहाँ आश्रय दिया और उन्हें अपने यहाँ थोड़ी-सी तनख्वाह पर नौकरी दी। उनका काम था कि चारों व्यक्ति चार मुहल्लों में घूमते रहें, उन्हें कोई विचित्र आदमी या घटनाएँ देखने को मिले तो उनके संबंध में पूरी जानकारी अपनी दिनचर्या की पुस्तक में लिखकर रखें और रात के वक़्त धर्मदास को सौंपे।

को जितना भी प्यार करे, कहीं उनके हाथ से भी मार खाते हैं? यह बात अगर अंत:पुर में मालूम हो जाएगी तो आप की न मालूम कैसी बेइज्जती होगी?"

सेनाध्यक्ष को यह बात लग गई। उसने धर्मदास से गिड़गिड़ाकर कहा— "देखो, यह बात तुम कहीं खोलो मत!"

"सरकार! वैसे इस बात को छिपाने में मुझे कोई आपत्ति नहीं है, मगर राजा स्वयं मुझे बुलाकर पूछे कि अबे, तुझे सेनाध्यक्ष का घर कैसे लगता है? तब तो मुझे सच्ची बात छिपानी नहीं चाहिए न?" धर्मदास ने उत्तर दिया।

उन खबरों के महत्व को देखते हुए खास बातों को धर्मदास अपनी बही में चढ़ा लेता था।

धीरे धीरे धर्मदास की बही एक लोकोक्ति ही बन गई। जो बातें लोग नहीं जानते थे, उनके बारे में कहा जाता था कि "धर्मदास की बही में ये बातें मिल सकती हैं।"

एक वर्ष दशहरे के उत्सव राजधानी में ठाठ से मनाये गये। उन उत्सवों को देखने के लिए लोग दूर दूर के प्रदेशों से जमा हो गये थे। दूर देशों के राजाओं ने उन उत्सवों में भाग लिया और राजा चन्द्रवर्मा को कई लाख रुपयों के मूल्य की हीरे की अंगूठी भेंट की।

दसवें दिन दशहरे के उत्सव समाप्त हुए। बाहर से जो लोग आये थे, वे सब लौट गये। उन उत्सवों के उत्साह में राजा ने अपनी हीरे की अंगूठी कहीं खो दी। राजा के कर्मचारियों तथा सिपाहियों ने अंगूठी की बड़ी खोज की, पर वह कहीं न मिली। तब ऊबकर सबने यही कहा—"अंगूठी का पता धर्मदास की बही में ही लग सकता है।"

अपना समय काटने के लिए राजा ने धर्मदास को बही के साथ राजमहल में बुलवा भेजा। राजा ने धर्मदास से पूछा— "धर्मदास! दशहरे के दसवें दिन के उत्सव की कोई विशेषताएँ है?"

धर्मदास ने बही खोलकर पढ़ा—"नगर की दक्षिणी गली में एक पेड़ से पट्ट हाथी
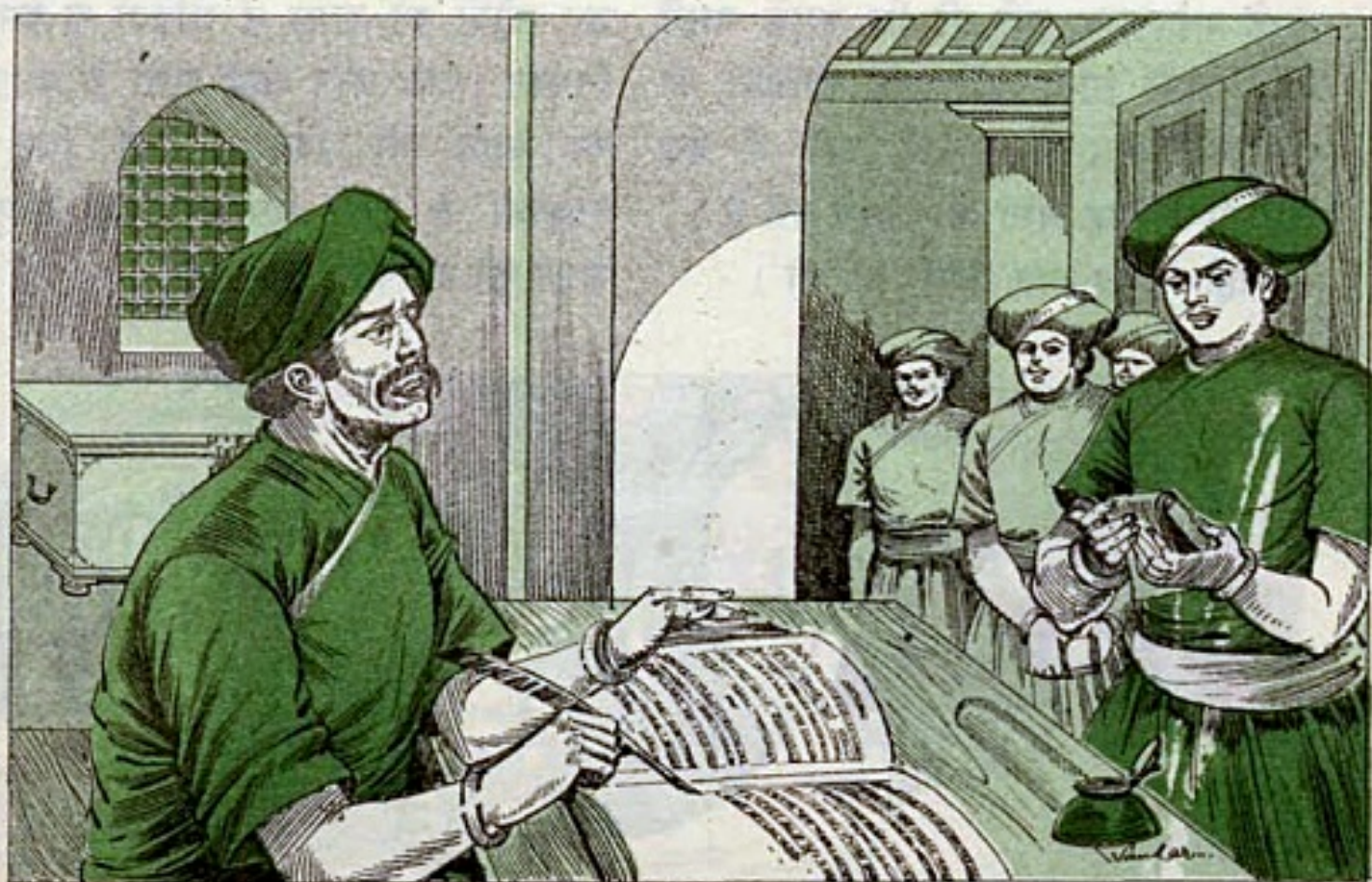
बंधा हुआ है। महावत जल्दी-जल्दी अपने घर की ओर दौड़ रहा है।"

राजा ने धर्मदास को आदेश दिया कि यह समाचार देनेवाले युवक को शीघ्र बुलवा ले। उस युवक ने आकर राजा के महावतों में उस व्यक्ति को पहचाना, जिसको उसने देखा था।

राजा ने गरजकर महावत से पूछा–"तुम पट्ट हाथी को बीच रास्ते में बांधकर अपने घर क्यों चले गये?"

"महाराज, मुझे शीघ्र घर जाना पड़ा। उस दिन आप हाथी से उतरकर पैदल उत्सव देखने चले गये। मेरा अपराध क्षमा कीजिए?" महावत ने मिन्नत की।

इस पर युवक ने राजा से कहा–"महाराज, कल इस महावत की पत्नी इससे माँग कर रही थी कि उसके वास्ते एक रेशमी साड़ी और एक मोतियों का हार खरीदकर दे। आप बही में देख लीजिएगा, यह बात भी उसमें दर्ज है।"

बही में यह बात लिखी हुई थी।

राजा ने महावत से पूछा–"बताओ, तुम्हें इतना सारा धन कहाँ से मिला? नहीं बताओगे तो तुम को फांसी के तख्ते पर चढ़वा दूंगा।"

महावत ने थर थर कांपते हुए असली बात बता दी–"महाराज, आप पट्ट हाथी से उतरकर जब जल्दी जल्दी जाने लगे तब आप के हाथ की हीरे की अंगूठी फिसलकर नीचे गिर गई। उसे मैंने झट से ले ली। मेरी पत्नी मुझे तंग कर रही है कि मैं उस अंगूठी को बेचकर उसके वास्ते रेशमी साड़ी और मोतियों का हार खरीद लूं?"

फिर क्या था, राजा को हीरे की क़ीमती अंगूठी प्राप्त हुई। राजा को यह भी मालूम हुआ कि धर्मदास तथा उन चार युवकों का उपयोग कैसे किया जाय? उन लोगों को राजा ने भेदियों के रूप में नियुक्त किया और उन्हें मंत्री के बराबर का वेतन भी दिया। उसी दिन से राजाओं के द्वारा गुप्तचरों को नियुक्त करने की परिपाटी चल पड़ी।

बेकार की सलाह

एक गाँव के श्मशान में अनेक पिशाचिनियाँ रहा करती थीं। उनमें एक अनुभवी वृद्ध पिशाचिनी थी। अन्य पिशाचिनियों को वह सलाहें दिया करती थी। एक दिन वृद्ध पिशाचिनी जंगल में एक उजड़े कुएँ के पास पहुँचकर जगत पर जा बैठी।

"कौन है वह! मेरी जगह क्यों बैठे हैं?" ये बातें सुन वृद्ध पिशाचिनी ने सिर उठाकर देखा। सामने एक पिशाचिनी को देख पूछा–"क्या यह तुम्हारी जगह है? कोई बात नहीं, जगह काफी है, तुम भी इस जगत पर आ बैठो।"

दूसरी पिशाचिनी वृद्ध पिशाचिनी की बग़ल में आ बैठी।

इस पर वृद्ध पिशाचिनी ने अपना परिचय दिया–"मैं सामने दिखाई देनेवाले श्मशान में रहा करती हूँ। पिशाचिनियों के सामने जो भी समस्या पैदा हो जाती, वे मेरे पास पहुँचकर अकसर मुझसे सलाहें लिया करती हैं।"

फिर क्या था, उस पिशाचिनी ने उत्साह में आकर कहा–"मेरे सामने भी एक समस्या पैदा हो गई है। दिमाग लड़ाने पर भी मुझे कोई उपाय नहीं सूझ रहा है!"

इसके दाद उसने वृद्ध पिशाचिनी को अपनी समस्या का सारा हाल यों सुनाया :

"मैं जिस बरगद पर निवास करती हूँ, उसके निकट एक उजड़ा हुआ मकान है। एक महीने पहले एक संगीत के विद्वान ने उस पर अधिकार कर लिया है। गाँव से कई लड़के व लड़कियाँ उसके यहाँ दिन भर संगीत का अभ्यास करती हैं। आज तक मैं बड़ी शांति के साथ अपने दिन काट रही थी। अब इन लोगों के कोलाहल को सुन मेरा दिमाग खराब होता जा रहा है। किसी भी हालत में संगीत

वीरेन्द्र प्रसाद

के विद्वान को उस घर से भगाना है। यही मेरी सब से बड़ी समस्या है।"

सारा वृत्तांत सुनकर वृद्ध पिशाचिनी बोली—"अरी, यह भी कोई समस्या है? तुम मेरे कहे मुताबिक़ करोगी तो तुम्हारी समस्या यूँ ही हल हो जाए।" इन शब्दों के साथ उसने कोई सलाह दी।

यह सलाह सुनकर वह युवा पिशाचिनी बड़ी खुश हुई। उसी दिन रात को वह संगीत के विद्वान के घर पहुंची। बिलाव के रूप में बदल कर विकृत रूप से चिल्लाते संगीत के विद्वान के कमरे में कूद पड़ी। आहट पाकर संगीत का विद्वान जाग पड़ा। उसने देखा कि बिलाव पिशाचिनी के रूप में बदल गया है। फिर भी हिम्मत बटोर कर उसने पूछा—"तुम कौन हो? इस वक़्त तुम्हें यहाँ पर क्या काम है?"

पिशाचिनी ठठाकर हँस पड़ी और बोली—"मैं तो एक भयंकर पिशाचिनी हूँ। विभिन्न रूप धारण कर इस घर में घूमा करती हूँ।" यों कहते वह चमगादड़ के रूप में बदल कर कमरे का चक्कर काटने लगी।

"अरी सुनो, तुम्हारा पुण्य होगा। तुम पहले की भाँति बिलाव के रूप में कमरे का चक्कर लगाते जाओ। चूहों से मैं बहुत परेशान हूँ। इसके बाद फिर छिपकली बनकर मच्छरों को खा डालो।" संगीत के विद्वान ने कहा।

पिशाचिनी संगीत के विद्वान की बातें सुन गुस्से में आ गई और बोली—"क्या तुम समझते हो कि मुझे कोई काम-धाम नहीं और मैं बेकार हूँ?" यों कहते वहाँ से चली गई।

दूसरे दिन वृद्ध पिशाचिनी से मिलकर बोली—"नानी जी! तुम्हारा उपाय काम न दे पाया। वह तो अक्ल का पुतला है।"

"एक उपाय अगर काम नहीं देता है तो दूसरा उपाय काम देगा! घबराते काहे को हो?" इन शब्दों के साथ उसने एक और उपाय बताया। युवा पिशाचिनी को लगा कि यह उपाय जरूर काम देगा।

उस उपाय के मुताबिक युवा पिशाचिनी संगीत के विद्वान के मकान की खपरैलों को निकाल-निकाल कर नीचे फेंकने लगी।

उस ध्वनि को सुनकर संगीत का विद्वान जाग पड़ा, घर से निकल कर पूछा– "खपरैलों को कौन हटा रहा है?"

"मैं ही पिशाचिनी हूं! कुछ न कुछ न करूँ तो मेरा मन परेशान रहता है!" यों कहते वह पल्थियाँ मारने लगी।

"करनटों की ये करतूतें बाद को दिखाना, पहले खपरैलों को हटाने का काम पूरा करो। इधर मेरी थोड़ी बहुत आमदनी हो रही है। इसलिए मैं खपरैल हटवाकर पक्का मकान बनवाना चाहता हूँ। सवेरे होने तक तुम्हें सारे खपरैल हटाने होंगे, समझी?" यों आदेश देकर संगीत का विद्वान मकान के सामने स्थित एक पेड़ के नीचे लेटकर खुर्राटे भरने लगा।

"यह कमबख्त मुझसे मज़ूरी का काम लेना चाहता है।" यों सोचकर वह उल्लू के रूप में उड़कर चली गई।

"तुम तो बहुत खुश नज़र आती हो! क्या तुमने संगीत के विद्वान को उस मकान से भगा दिया?" पिशाचिनी ने पूछा।

"मेरा सिर! उसने मुझको ही भगा दिया है। उसके आगे तुम्हारी सलाहें बिलकुल काम नहीं दे रही हैं!" युवा पिशाचिनी ने चितापूर्ण स्वर में कहा।

अपनी दोनों योजनाओं के असफल होते देख वृद्ध पिशाचिनी को अपमान-सा लगा।
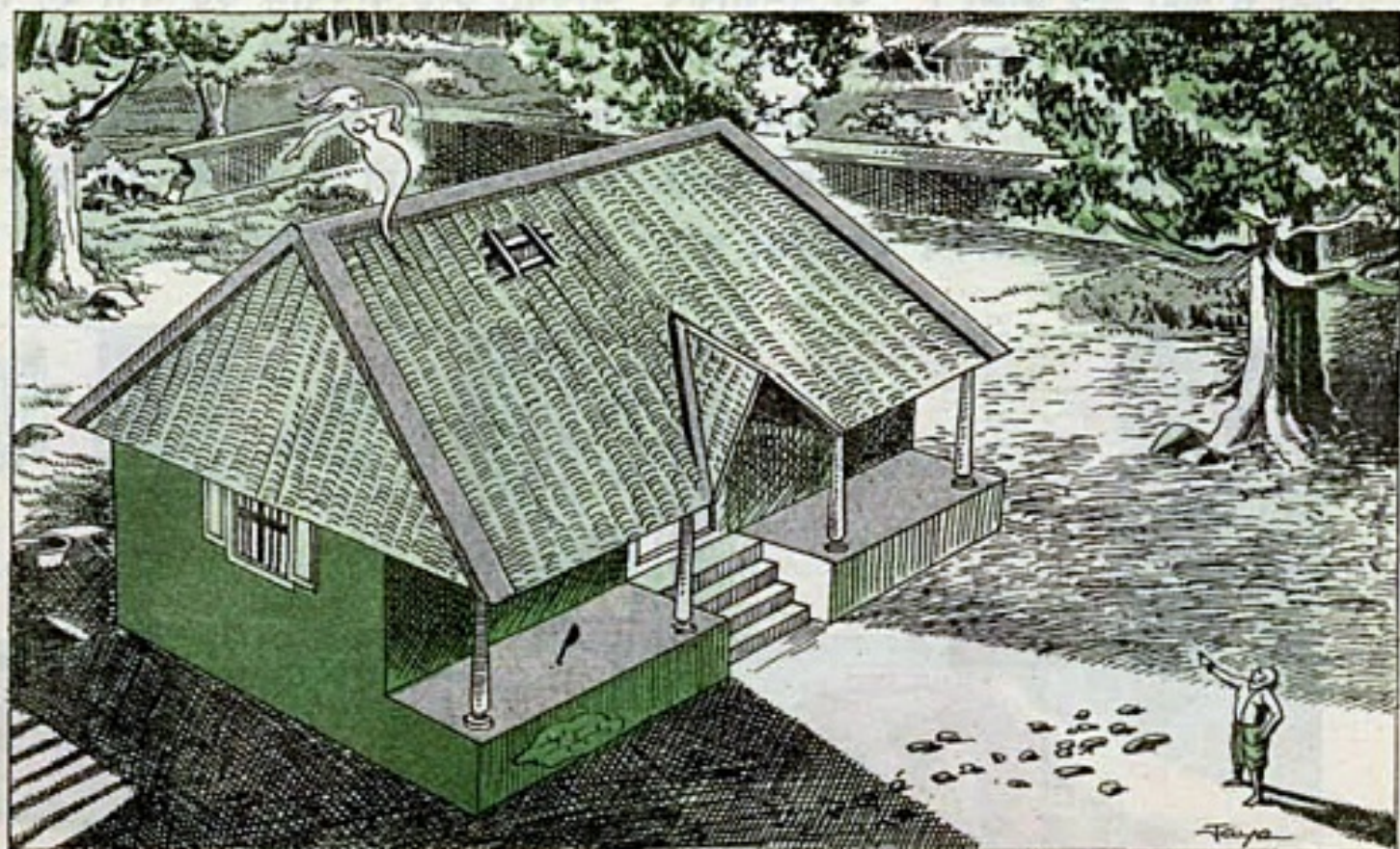
उसने युवा पिशाचिनी को तीसरी युक्ति बताई। उस युक्ति के अनुसार युवा पिशाचिनी ने तीसरे दिन रात को सोनेवाले संगीत के विद्वान को जगाया।

"तुम फिर क्यों आ धमकी?" संगीत के विद्वान ने खीझकर पूछा।

"तुम चुपचाप इस मकान को छोड़कर भाग जाओ। यह मकान मेरा हैं।" युवा पिशाचिनी ने धमकी भरे स्वर में पूछा।

"वाह! तुमने भी खूब कहा। मैं कई दिनों तक किराये पर कोई मकान प्राप्त न कर सका। संगीत के विद्वान को कौन अपना मकान किराये पर देगा? मेरी क़िस्मत प्रबल थी, इसलिए यह मकान मुफ़्त में मिल गया है। इसलिए इस मकान को छोड़ने का सवाल ही नहीं उठता। तुम्हीं यहाँ से कहीं चले जाओ।" यों समझाकर संगीत का विद्वान करवट बदलकर लेट गया।

युवा पिशाचिनी का चेहरा फीका पड़ गया। आराम से बैठे-बैठे किसी को सलाहें देना आसान है। लेकिन सच पूछा जाय तो अपनी समस्याओं को आप हल करने से कोई दूसरा उत्तम कार्य नहीं है।

दूसरे दिन युवा पिशाचिनी सोचती ही रह गई। उस दिन रात को संगीत के विद्वान के यहाँ पहुँचकर गिड़गिड़ाने के स्वर में बोली–"तुम कल रात से मुझे संगीत सिखाना आरंभ कर दो। यदि तुमने नहीं माना तो मैं कल सुबह सबके साथ बैठकर संग़ीत की साधना करूँगी।"

पिशाचिनी के मुँह से ये शब्द सुनकर संगीत का विद्वान घबरा गया। इधर थोड़े दिनों से वह नाम के साथ धन भी कमाने लग गया है। अगर गाँववालों को यह मालूम हो जाय कि वह पिशाचिनियों को संगीत सिखा रहा है, तो कोई विद्यार्थी उसके यहाँ संगीत सीखने के लिए न आयेगा, उल्टे गाँववाले उसे भगा देंगे।

यों सोचकर संगीत के विद्वान ने उसी दिन रात को अपना बोरी-बिस्तर लपेटा और सवेरा होते ही गाँव के दूसरे छोर पर एक और मकान किराये पर लिया।

दो मूर्ख

एक गाँव में गोकुलदास नामक एक किसान था। उसने अपने दो एकड़ के खेत में ज्वार बोया। ज्वार जब कटाई के लिए तैयार था तब गोविंद की मवेशियों ने खेत में घुसकर सारी फ़सल नष्ट कर दी। गोकुलदास ने गोविंद से एक हज़ार रुपये का हर्जाना माँगा, पर गोविंद देने को तैयार नहीं हुआ।

गोकुलदास ने गाँव के बुजुर्गों से न्याय दिलाने की प्रार्थना की। बुजुर्गों ने फ़ैसला सुनाया कि गोकुलदास ने अपने खेत के चारों तरफ़ बाड़ी न लगाई और न पहरा रखा, यह उसका अपराध है। साथ ही अपनी मवेशियों को बाँध कर न रखना गोविंद का अपराध है, इसलिए गोविंद आधी रक़म याने पाँच सौ रुपये का हर्जाना गोकुलदास को दे। याने दोनों अपने अपराध का दण्ड भोगे।

गाँव का मुखिया घूसखोर था। इसलिए गोविंद ने उसे अपने पक्ष में फ़ैसला सुनाने के लिए मुखिये को ढाई सौ रुपये घूस देने का लोभ दिखाया और गोकुल दास से कहा कि हमारे झगड़े का फ़ैसला करनेवाले मुखिया ही होते हैं। उसका विचार था कि हर्जाना कम चुकाना पड़ेगा। मुखिये ने घूस लेकर फ़ैसला सुनाया कि गोकुलदास ने अपने खेत पर न बाड़ी लगाई और न पहरा रखा, यह तो उसकी गल्ती है। इसलिए गोविंद के द्वारा गोकुल दास को हर्जाना देने की कोई जरूरत नहीं।

पर गोकुलदास ने उस फ़ैसले को न माना। उसने तालूकेदार की शरण ली। वह भी घूसखोर था। इसलिए गोकुलदास ने उसे ढाई सौ रुपये का घूस देकर अपने पक्ष में फ़ैसला सुनवाया।

सुरेश कुमार

तालूकेदार ने अपना फ़ैसला यों सुनाया—"गाँव के सभी खेतों के लिए बाड़ियाँ लगवानी हैं, यह कोई नियम नहीं है। इसलिए गोकुलदास को जो नुक़सान हुआ है, उसकी पूरी जिम्मेदारी गोविंद की है। अतः उसे गोकुलदास को एक हज़ार रुपये हर्जाना चुकाना होगा।

इस पर गोविंद ने जिला के अधिकारी का आश्रय लिया। वह भी घूसखोर था। उसने कहा—"तालूकेदार ने तुम्हें गोकुलदास को एक हज़ार रुपये का हर्जाना भरने को कहा है न, उसमें आधा मुझे दे दो, मैं तुम्हारे पक्ष में फ़ैसला सुनाऊँगा।"

गोविंद ने सोचा कि यदि वह पाँच सौ रुपये जिला के अधिकारी को दे, तब भी उसे ढ़ाई सौ का लाभ होगा, यों सोचकर उसने जिला के अधिकारी को पाँच सौ घूस दे दिया। इस पर उसने फ़ैसला सुनाया कि तालूकेदार का फ़ैसला सही नहीं है, मुखिये का फ़ैसला ही सही है।

इस पर गोकुलदास का जोश बढ़ गया, उसने मण्डल के अधिकारी के पास जाकर पाँच सौ रुपये घूस दिया और अपने पक्ष में फैसला सुनवा लिया।

अब राज्य के अधिकारी का फ़ैसला शेष रह गया था। वह ईमानदार तथा न्याय प्रिय था। उसने सारी बातें सुनकर गाँव के बुजुर्गों के फ़ैसलों का समर्थन करते हुए फ़ैसला सुनाया कि गोविंद गोकुलदास को पाँच सौ रुपये का हर्जाना चुका दे। गोविंद ने गोकुलदास को पाँच सौ का हर्जाना चुकाया।

इसके बाद गोकुलदास और गोविंद ने घर लौटते हुए इस बात का हिसाब लगाया कि उन्हें गाँव के बुजुर्गों के फ़ैसले को न मानने पर कितना नुक़सान हुआ है। अंत में पता चला कि प्रत्येक को साढ़े सात सौ रुपयों का नुक़सान हुआ है, उल्टे काफ़ी दौड़धूप भी करनी पड़ी थी। इसका कारण उन लोगों की मूर्खता और घूसखोरों के आश्रय में जाना ही था।

भूत दया

एक राजा अपनी वर्षगांठ मना रहा था। सामंत राजा अपार उपहार लाकर राजा को सौंप रहे थे। एक शिकार ने एक हिरण शावक को लाकर राजा को सौंप दिया। राजा ने प्रसन्न होकर उसकी झोली भर सोना दे दिया।

इसे देख मंत्री ने कहा–"महाराज, आपने शिकारी को जो इनाम दिया, वह शायद बहुत ही ज्यादा है।"

"बिलकुल नहीं, स्वेच्छापूर्वक विहार करनेवाले साधु स्वभाव के प्राणियों को फिर से स्वेच्छा दिलाने का मौक़ा मुझे रोज थोड़े ही मिलता है?" राजा ने कहा।

"महाराज! आप कृपया एक बात पर ध्यान दीजिए! यदि लोगों को मालूम हो जाय कि बन्दी हुए साधु स्वभाव के प्राणियों को आप पुरस्कार देकर मुक्त करते हैं तो ऐसे प्राणियों को पकड़कर आपको भेंट देने के लिए अनेक लोग आगे आयेंगे। इस प्रयत्न में कुछ प्राणियों की हानि भी हो सकती है। यदि आप प्राणियों पर भूतदया दिखाना चाहते हैं तो कृपया ऐसा क़ानून बनाइये कि कोई भी व्यक्ति साधु-स्वभाव के प्राणियों को बन्दी न बनावे। लेकिन हिंसा के द्वारा बन्दी किये प्राणियों को मुक्त करने पर वह करुणा नहीं कहलाता।" मंत्री ने नम्र शब्दों में निवेदन किया।

राजा शर्मिदा हुआ और मंत्री के सुझाव के अनुसार क़ानून बनाया।
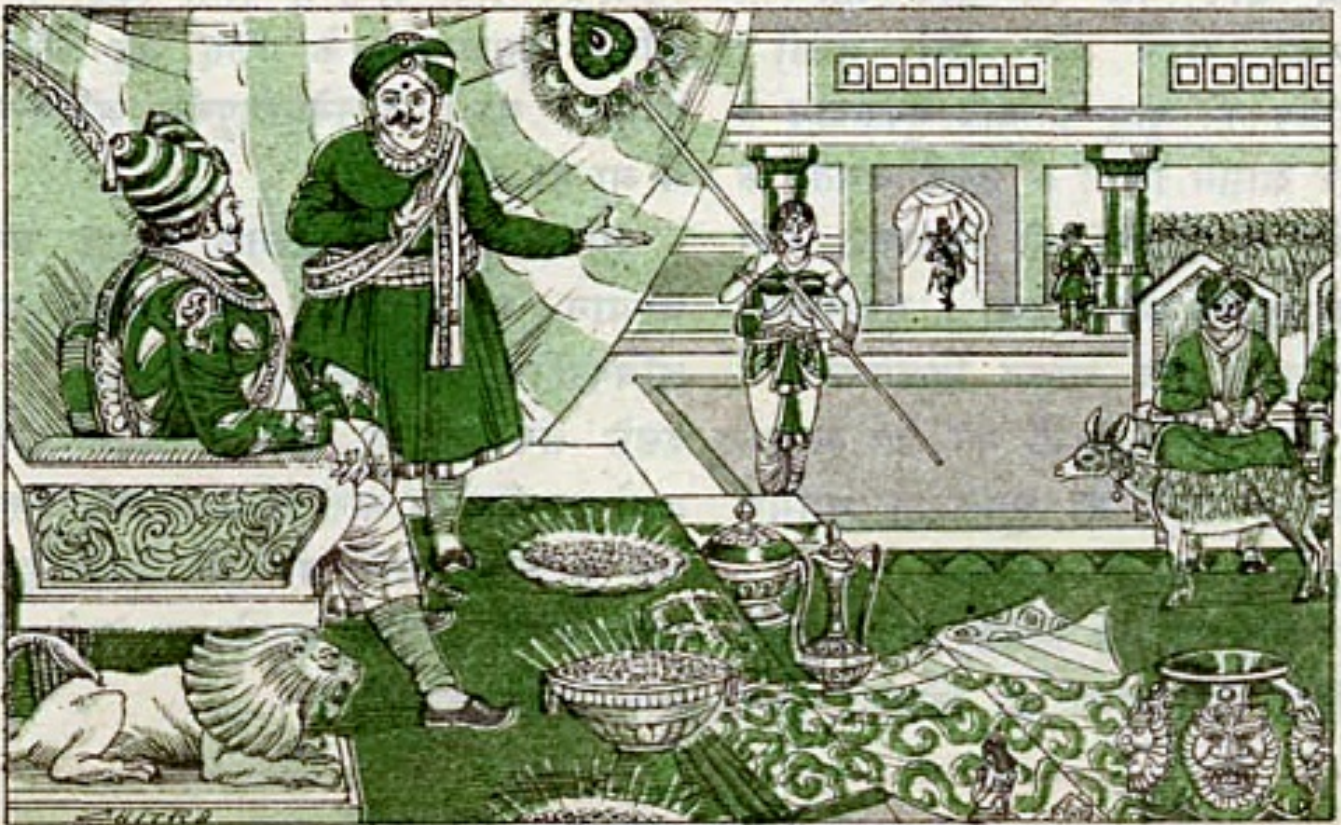
बुद्धिमान

ओरुगल्लु के पतन के साथ काकतीय साम्राज्य का अंत हो गया। काकतीय चक्रवर्ती प्रतापरुद्र के यहाँ हरिहरराय तथा बुक्कराय नामक दो भाई कोशाध्यक्ष का काम संभालते थे, प्रतापरुद्र की मृत्यु के बाद वे दोनों तुंगभद्रा नदी के तट की ओर चले गये और वहाँ पर विजयनगर राज्य की नींव डाली। हरिहरराय की मृत्यु के बाद बुक्कराय ने उस पर शासन किया। उसने जनता के बीच धार्मिक विद्वेषों को मिटाकर सभी धर्मों को समान रूप से देखा। मुसलमानों के शासन से तंग आकर विजयनगर में प्रवेश करनेवाले हिन्दुओं को वह आश्रय देने लगा। फिर भी बुक्कराय धार्मिक सहिष्णुता के लिए मशहूर थे।

ओरुगल्लु का यह नियम था कि यदि कोई हिन्दू उस राज्य को छोड़कर दूसरे राज्य में जाना चाहता तो वह अपने साथ एक कौड़ी भी संपत्ति के नाम न ले जा सकता था। अपनी सारी संपत्ति सरकार के अधीन करके जाना पड़ता था। अपने साथ जो लोग संपत्ति ले जाना चाहते थे, उन्हें अनेक अधिकारियों को अपने पक्ष में मिलाकर चोरी-चोरी ले जाना पड़ता था। लेकिन मुसलमानों के लिए यह नियम लागू न था। वे स्वेच्छापूर्वक ओरुगल्लु में आ-जा सकते थे।

ओरुगल्लु में मोतीलाल नामक एक धनवान था। उसे हर बात पर अधिकारियों को नजराने देने पड़ते थे। इससे तंग आकर उसने विजयनगर में जाने का निश्चय कर लिया। यदि प्रकट रूप में जाना चाहे तो उसे खाली हाथ जाना था। इसलिए उसने एक फकीर के साथ दोस्ती कर ली।

विमलेश वर्मा

लोगों में यह विश्वास था कि फ़कीर अत्यंत ईमानदार व्यक्ति है। उसके यहाँ एक ऊँट भी था। वह मक्का-मदीना आदि स्थानों में भी इसी ऊँट पर जाया करता था। उसका असली नाम किसी को पता न था, पर लोगों में वह फ़कीर नाम से ज़्यादा मशहूर था। उस नाम से पुकारने पर वह दाढ़ी संवारते हुए जवाब दिया करता था। उस फ़कीर ने मोतीलाल की मदद करने को मान लिया। मोतीलाल ने उसे लोभ दिखाया कि उसका एक मन भर सोना, बहुत से हीरे और जवाहरातों को सुरक्षित विजयनगर पहुँचा दे तो उसे एक लाख सिक्के पुरस्कार में दिये जायेंगे।

दोनों ने एक योजना बनाई। फ़कीर गुप्त रूप से पहले विजयनगर पहुँच जाएगा। इसके पंद्रह दिन बाद मोतीलाल खाली हाथ रवाना हो विजयनगर पहुँचेगा और उधर फ़कीर उसका इंतज़ार करेगा।

इस पूर्व योजना के अनुसार फ़कीर के रवाना होने के पंद्रह दिन बाद मोतीलाल रवाना हुआ और विजयनगर पहुँच कर फ़कीर की खोज़-खबर ली। उसने हर घर और धर्मशाला को छान डाला, पर उसे कहीं फ़कीर का पता न चला।

बात यह थी कि एक साथ इतनी सारी संपत्ति को देखने पर फ़कीर के मन में उसे हड़पने की लालसा पैदा हो गई। इसलिए विजयनगर में पहुँचते ही उसने अपनी दाढ़ी-मूँछें बनवा लीं। हिन्दू व्यापारी का वेष धरकर मोतिलाल का सारा माल बेच डाला।

इसके बाद वह ठाठ से विजयनगर में घूमने लगा। एक दिन अचानक मोतीलाल की उससे मुलाक़ात हो गई। पर मोतीलाल उसे पहचान न पाया। उसने फ़कीर से पूछा—"महाशय, दो सप्ताह पूर्व ओरुगल्लु से ऊँट पर एक फ़कीर इस नगर में आया है। क्या आपने उसे देखा?"

"जी हाँ, मैंने उसे देखा है। उसे हाथ भर लंबी दाढ़ी है न!" फ़कीर ने मोतीलाल से पूछा।

"हाँ, हाँ, क्या आप उसका पता बता सकते हैं?" मोतीलाल ने फ़कीर से फिर पूछा।

"वे तो कल मुझे यहीं पर दिखाई दिये। उनके पास हीरे-जवाहरात और बहुत सारा सोना भी था। मुझसे उन्हें खरीदने को कहा, पर मैंने नहीं खरीदा। इतने में कोई बगदाद का सौदागर आया, इसके बाद वे दोनों मिलकर बगदाद चले गये।" इन शब्दों के साथ फ़कीर ने अपनी आदत के मुताबिक़ दाढ़ी पर हाथ फेरना शुरू किया।

फिर क्या था, मोतीलाल ने फ़कीर को पहचान लिया और धमकी भरे स्वर में कहा–"तुम्हीं फ़कीर हो! तुमने मेरा सारा धन हड़प लिया है।"

दोनों के बीच वाद-विवाद बढ़ता गया। अंत में मोतीलाल ने बुक्कराय के यहाँ जाकर शिकायत की।

बुक्कराय ने फ़कीर को न्यायालय में बुला भेजा। उसने मीठे शब्दों में कहा– "तुम मोतीलाल की संपत्ति उसे दे दो।"

"हुज़ूर! मैं फ़कीर नहीं हूँ।" फ़कीर ने जवाब दिया।

"तो मोतीलाल तुमको फ़कीर क्यों बता रहा है?" बुक्कराय ने पूछा।

"क्योंकि उसने सोचा कि मैं व्यापारी हूँ और मेरे पास बहुत सारा धन है। इसलिए इसे हड़पने के लिए उसने यह चाल चली है!" फ़कीर ने जवाब दिया।

बुक्कराय ने पल भर सोचकर फ़कीर से कहा–"मोतीलाल की फ़रियाद बेमतलब की है। इसलिए तुम जा सकते हो!"

फ़कीर फूला न समाया। खुशी-खुशी न्यायालय से बाहर जाने लगा। तभी बुक्कराय ने पुकारा–"फ़कीर, रुक जाओ।"

दूसरे ही क्षण फ़कीर ने मुड़कर देखा।

इस तरह फ़कीर की पोल खुल गई। इसके बाद बुक्कराय ने मोतीलाल को उसकी संपत्ति वापस दिलाई और फ़कीर को सजा सुनाई।

उल्टी बात

गोवर्द्धन और जमुनाबाई नामक दंपति थे। जमुनाबाई के मुंह से जो भी बात निकलती, उसे गोवर्द्धन काट देता था। दीपावली का पर्व निकट था। जमुनाबाई ने अपने मायके जाने की इच्छा प्रकट की। इस पर गोवर्द्धन ने डांट कर कहा–"नहीं, तुम कभी नहीं जा सकती, चुपचाप घर में पड़ी रहो।"

उस दिन रात को जमुनाबाई का भाई रामनारायण किसी काम से उस गाँव में आया। जमुनाबाई ने अपने भाई से अपने पति का सारा हाल कह सुनाया। रात को भोजन के बाद रामनारायण आराम से सो गया। दूसरे दिन सवेरे अपने गाँव लौटते हुए गोवर्द्धन से बोला–"गोवर्द्धन, जमुनाबाई को त्योहार पर अपने घर बुलाया. तो वह कहती है कि तुमने तो जाने की अनुमति दी, पर वह जाना नहीं चाहती। यह तो कैसी हठी बन गई है! फिर भी बेचारी को माफ़ कर दो।"

दूसरे ही क्षण गोवर्द्धन ने घर के भीतर जाकर जमुनाबाई से कहा–"तुम्हें मायके बुलाया, तो जाती क्यों नहीं? तुरंत चली जाओ।"

"जी, मैं नहीं जाऊँगी। अगर आप ज़बर्दस्ती करेंगे तो पर्व के दिन सुबह जाकर शाम को लौट आऊँगी।" जमुनाबाई ने जवाब दिया।

गोवर्द्धन ने झल्ला कर कहा–"यह नहीं हो सकता। तुम अभी चली जाओ। अपने मायके में दीपावली बिताकर तब लौट आओ।" यों कहकर गाड़ी लाने गोवर्द्धन बाहर चला गया।
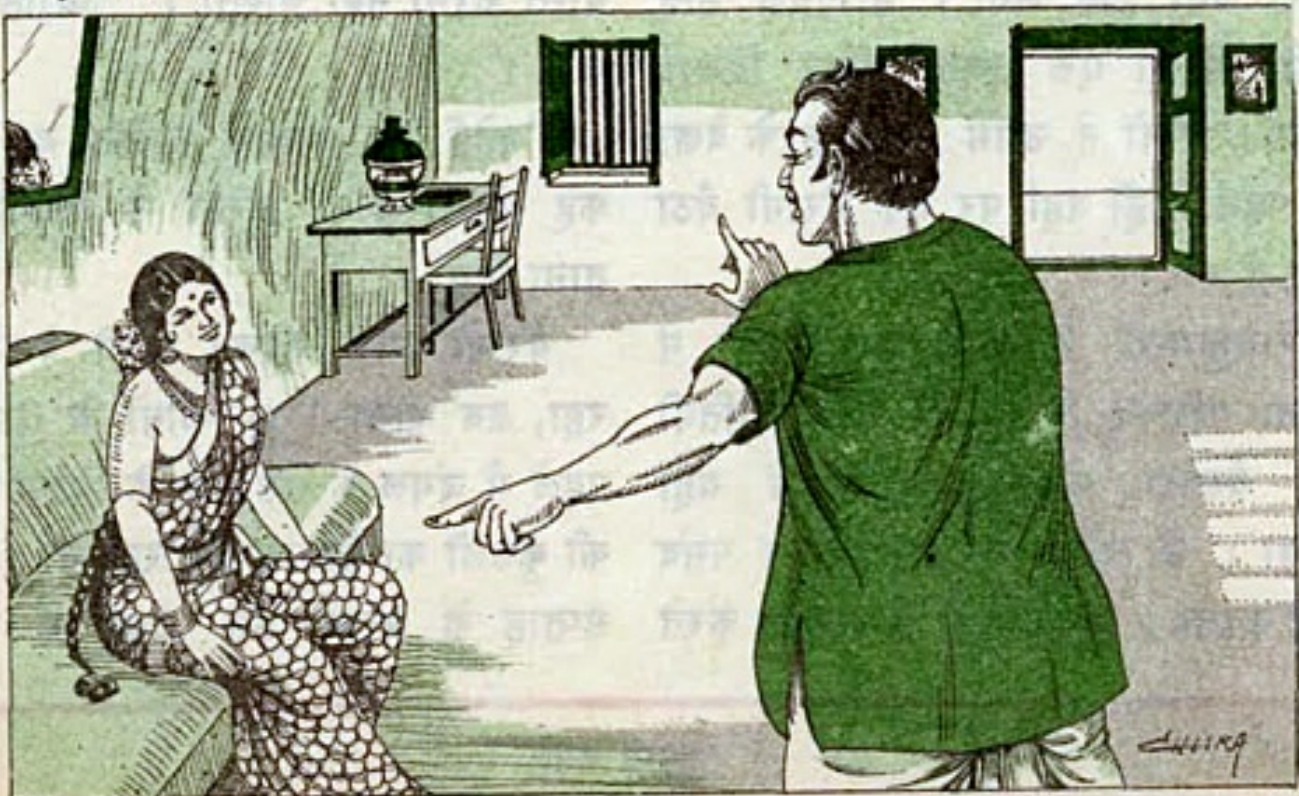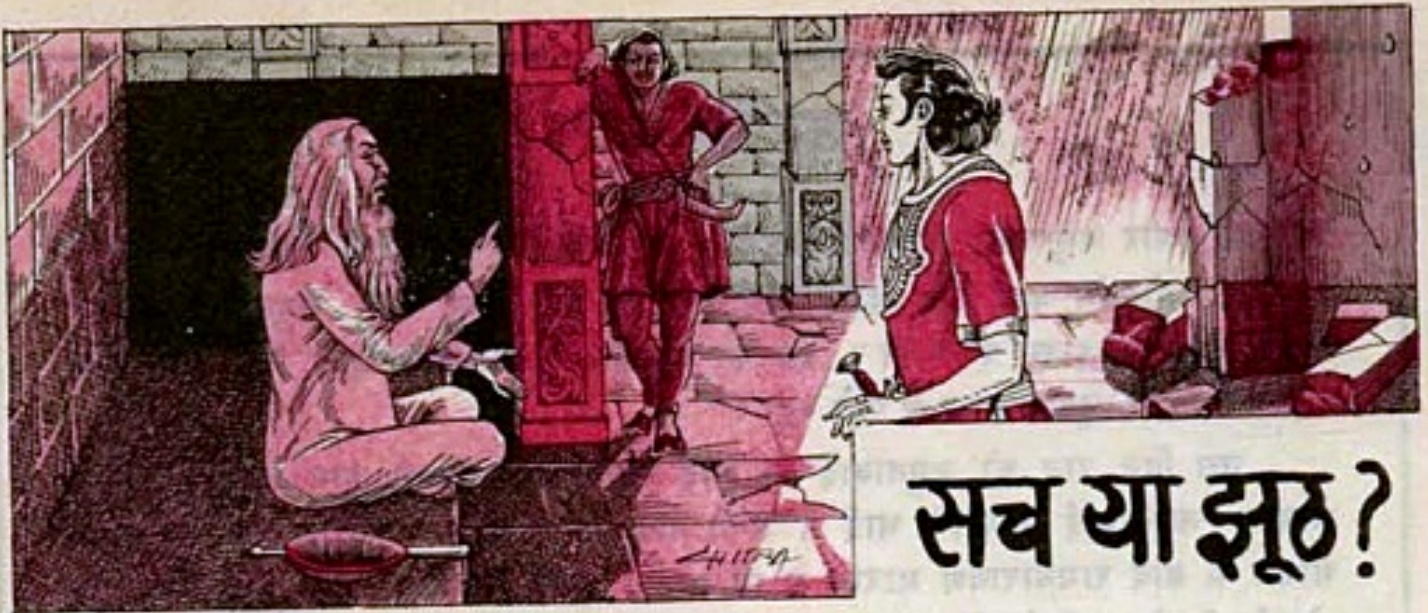
सच या झूठ?

प्राचीन काल में सुधीर और सुरेन्द्र नामक दो राजकुमार पुरी के एक विद्यापीठ में अपनी शिक्षा समाप्त कर अपने अपने देश के लिए चल पड़े। उन दोनों में गहरी मित्रता थी, साथ ही अड़ोस-पड़ोस देशों के निवासी थे।

मार्ग मध्य में एक जंगल आ पड़ा। जंगल से होकर यात्रा कर ही रहे थे कि भारी वर्षा होने लगी। भाग्यवश उन्हें समीप में ही एक उजड़ा मंदिर दिखाई दिया। दोनों ने उसमें प्रवेश करके देखा कि पहले से ही वहाँ पर एक बैरागी बैठा हुआ है।

राजकुमारों के पूछने पर बैरागी ने अपना परिचय दिया—"मैं एक ज्योतिषी हूँ। देशाटन करते कल ही मैं यहाँ पहुंचा। मैं लोगों के बीच रहना पसंद नहीं करता। अनेक देशों का भ्रमण करते हुए मैंने ज्योतिष शास्त्र में पांडित्य प्राप्त किया है।"

सुरेन्द्र ज्योतिष शास्त्र के प्रति बड़ी अभिरुचि रखता था। उसने ज्योतिषी से पूछा कि उसका भविष्य बतावे।

"भविष्य को जानकर कोई भी मनुष्य कुछ न कर सकेगा! वह होकर ही रहेगा। मैं अपने शास्त्र का उपयोग मनुष्यों के वास्ते करना नहीं चाहता।" ज्योतिषी ने कहा।

"कोई भी असमर्थ व्यक्ति यह बात कह सकता है।" सुरेन्द्र ने बैरागी को ताना दिया।

बैरागी आँखें मूंदकर थोड़ी देर मौन रहा, तब बोला—"तुम लोगों के आने के पहले मैं जंगल के उस पार के विदर्भ राज्य की कुंडली का हिसाब कर रहा था। एक सप्ताह के अन्दर उस राज्य में भारी

रघुनाथ शर्मा

परिवर्तन होने जा रहे हैं। फिलहाल उस राज्य पर एक अयोग्य शासक शासन कर रहा है। उसकी हत्या होगी। मगर हत्या करनेवाला व्यक्ति गद्दी पर नहीं बैठेगा, बल्कि दूसरा व्यक्ति गद्दी का अधिकारी होगा! मेरा यह ज्योतिष कभी झूठा नहीं हो सकता।"

सुरेन्द्र ने इसका प्रतिवाद नहीं किया। ज्योतिष में विश्वास न रखनेवाला सुधीर भी मौन रह गया। इस बीच वर्षा थम गई। दोनों मित्र बैरागी से विदा लेकर आगे बढ़े। जंगल को पार करते ही एक मार्ग दिखाई दिया। उस मार्ग की एक दिशा में जाने पर विदर्भ पड़ेगा और दूसरी दिशा में जाने पर राजकुमारों के देश।

लेकिन सुरेन्द्र ने वहाँ रुककर सुधीर से कहा—"मैं इस विदर्भ का हाल जानना चाहता हूँ। विदर्भ का राजा अयोग्य है। उसकी वजह से जनता नाना प्रकार की यातनाएँ भोग रही है। मैं उसका वध करके विदर्भ की जनता की भलाई करना चाहता हूँ।"

सुधीर ने विस्मय में आकर कहा—"सुरेन्द्र! तुम बैरागी की बातों में आकर आफ़त मोल लेना चाहते हो? किसी पराये देश की भलाई करना कैसे? चलो, हम अपने रास्ते चले चलेंगे। यदि बैरागी का ज्योतिष सच भी निकला, तब भी उसका फल तुम्हें प्राप्त होनेवाला नहीं है। कोई दूसरा व्यक्ति राजा बन बैठेगा।"

"मैं फल की कामना नहीं रखता। भलाई किसी की भी की जा सकती है। तुम जाओ, मैं शीघ्र लौट आऊँगा।" यों समझाकर सुधीर विदर्भ की ओर बढ़ा।

सुधीर को लगा कि उसका मित्र भयंकर आफ़त में फंसने जा रहा है। किसी भी तरह से उसकी रक्षा करना उसका कर्तव्य है। इसलिए वह भी सुरेन्द्र के पीछे विदर्भ की ओर चल पड़ा।

सुरेन्द्र सीधे विदर्भ की राजधानी में गया और एक धर्मशाला में ठहरा। सुधीर

ने उस धर्मशाला को देखा। तब वह सीधे विदर्भ के मंत्री कालकेशी के घर पहुँचा। अपना परिचय देकर अपने मित्र सुरेन्द्र का सारा वृत्तांत सुनाया। तब उसने कालकेशी को सलाह दी–"आप कृपया एक सप्ताह तक मेरे मित्र को बन्दी बनाकर उसके बाद मुक्त कर दीजिए। वह अपने रास्ते आप चला जाएगा। मैं आप को यह विश्वास दिलाता हूँ कि एक सप्ताह के बाद वह आप के राजा की हत्या करने का प्रयत्न न करेगा।"

"हमारे राजा की हत्या करने का प्रयत्न करनेवाले का मैं इसी वक़्त सिरच्छेद करवा देता, लेकिन तुम्हारी बातों पर विश्वास करके मैं उसे छोड़ देता हूँ। तुम्हारी इच्छा के अनुसार मैं उसे एक सप्ताह तक कारागार में बन्दी बनाकर मुक्त करूँगा।" मंत्री ने हामी भर दी।

जब मंत्री ने शपथ खाकर यह हामी भर दी कि सुरेन्द्र के प्राणों के लिए कोई खतरा न होगा, तब सुधीर ने सुरेन्द्र की धर्मशाला का पता बताया। उसने भी यह निश्चय किया कि अपने मित्र सुरेन्द्र के कारागार से रिहा होने तक वहीं रहेगा, तब उसके साथ ही वह भी अपने देश को चला जाएगा, यह निर्णय करके उसने दूसरी धर्मशाला में कमरा लिया।

लेकिन दूसरे दिन दुपहर को ही सुधीर को यह समाचार मिला कि सुरेन्द्र पिछली रात को ही राजा की हत्या करके राजभटों के हाथ बन्दी हो गया है।

यह समाचार सुनने पर सुधीर हताश हो गया। उसने मंत्री कालकेशी के घर जाकर पूछा–"महाशय, मैंने पहले ही आप को इसलिए सावधान किया था कि इस हत्या के पूर्व ही मेरे मित्र को बन्दी बना लीजिए। आप ने उसे कल ही क्यों बन्दी नहीं बनाया? आप की लापरवाही के कारण ही तो यह अनर्थ हो गया है? यदि आप अपनी असमर्थता बता देते तो मैं कोई दूसरा उपाय सोच लेता।"

कालकेशी ने पश्चात्ताप प्रकट करते हुए कहा–"भाई, मैं तुम्हारे कहे मुताबिक़ ही करना चाहता था, लेकिन तुम्हारा मित्र मेरी चाल भांपकर बच निकला। मैंने कल्पना तक नहीं की कि वह इतनी जल्दी यह दारुण हत्या कर बैठेगा। अब उसे मृत्यु दण्ड निश्चित है।"

मंत्री के मुँह से ये बातें सुनने पर सुधीर का मन विकल हो उठा। अब मंत्री से वाद-विवाद करने से कोई प्रयोजन न था। इसलिए सुरेन्द्र को मृत्यु दण्ड से बचाने का उपाय सोचने लगा। उसे इस बात का दुख सताने लगा कि अपने मित्र के मृत्यु-दण्ड का कारण वही है। राजा की हत्या के पूर्व ही उसने हत्यारे का नाम व पता मंत्री को बता दिया था।

थोड़े दिन बीत गये। राजधानी में यह खबर फैल गई कि दूसरे दिन मंत्री कालकेशी का राज्याभिषेक होने जा रहा है। उसी मुहूर्त में सुरेन्द्र को मृत्यु दण्ड भी दिया जाएगा।

भरी सभा में सुरेन्द्र को हाथ बांधकर लाया गया। पहले सुरेन्द्र का शिरच्छेद तथा बाद को कालकेशी का राज्याभिषेक होनेवाला था। सुधीर ने कालकेशी के निकट जाकर निवेदन किया–"महाराज! राजद्रोही का सर काटने का मौक़ा मुझे दिलाइए। यह काम करके मैं अपनी जिम्मेदारी पूरा करूँगा।"
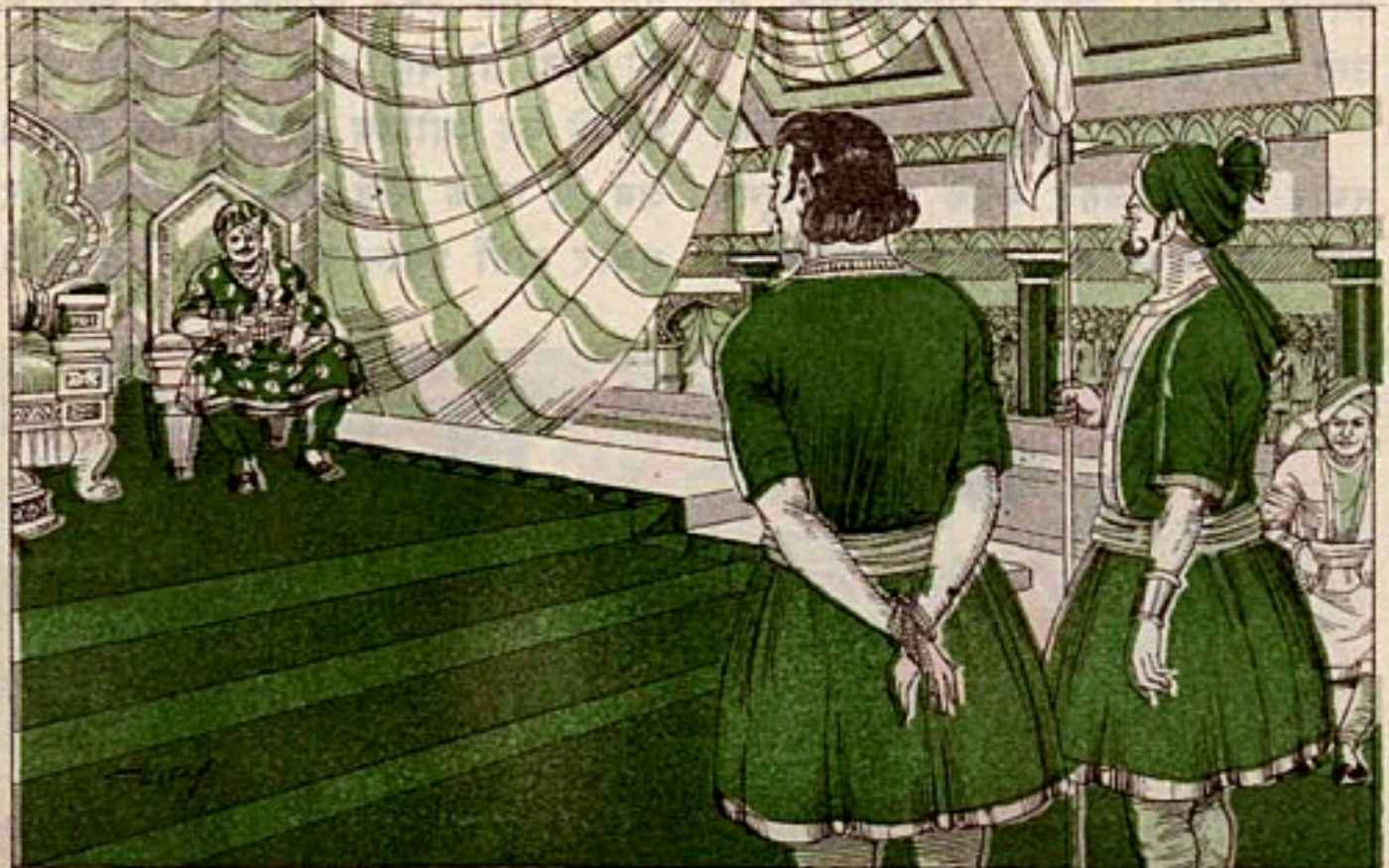
कालकेशी ने उसे अपनी सम्मति दी।

सुधीर ने म्यान से तलवार निकालकर सुरेन्द्र की ओर एक क़दम बढ़ाया, किसी संदेह का अभिनय करते हुए पुन: कालकेशी की ओर मुड़ा और बिजली की गति के साथ अपनी तलवार से कालकेशी का सर काट डाला।

दरबार में हाहाकार मचने के बदले श्मशान की सी शांति विराजमान थी। राजभट, पृथ्वी की ओर देखते मूर्तिवत खड़े रह गये। इतने में सारी सभा में हर्ष ध्वनि गूँज उठी। यह तो आश्चर्य की बात थी कि कालकेशी की मृत्यु पर जनता अपनी प्रसन्नता प्रकट कर रही है।

इसके बाद सभा में एक मत से यह निर्णय हुआ कि सुरेन्द्र ही विदर्भ का राजा बनाया जाय! उसका राज्याभिषेक भी उसी वक़्त हो गया।

इसके उपरांत सुरेन्द्र ने अपने मित्र सुधीर का आलिंगन करके पूछा—"तुमने मेरी रक्षा करने के लिए क्या कालकेशी का वध किया है? अथवा बैरागी की बातों को झुठलाने को?"

तुम्हारी दोनों बातों में से कोई भी सत्य नहीं। कालकेशी के व्यवहार में मुझे संदेह झलक रहा था। उस दुष्ट ने अपने राजा की हत्या होने पर तुम्हारा उपयोग करके उसने गद्दी पर अधिकार करना चाहा। उसी वक़्त बैरागी का ज्योतिष झूठा साबित हुआ। तुमने ही राजा का वध किया और तुम ही राजा बन बैठे?" सुधीर ने समझाया।

इस पर सुरेन्द्र ने हँसकर कहा—"नहीं, दोस्त! बैरागी का ज्योतिष सौ प्रतिशत सच निकला। राजा की मैंने हत्या नहीं की। कालकेशी ने हत्या का आरोप मुझ पर लगाकर उसने राजा बनना चाहा।"

यह बात सुनकर सुधीर चकित रह गया। यदि उसने कालकेशी की हत्या न की होती तो वही राजा बन बैठता और बैरागी का ज्योतिष झूठा साबित होता। अब तो उसके सत्य बनने में सुरेन्द्र और सुधीर दोनों प्रयत्न करनेवाले सिद्ध हुए।

हजारों की संख्या में वानर एक साथ कुंभकर्ण पर हमला कर बैठे। सब ने उस पर्वताकृतिवाले को मुट्ठियों से मारा, नाखूनों से चीरा, काटा और घुटनों का प्रहार किया। मगर कुंभकर्ण ने जरा भी परवाह नहीं की और उल्टे वानरों का निर्मुल करने लगा। अंत में यह स्पष्ट हो गया कि कुंभकर्ण को हराना वानरों के लिए असंभव है।

इस पर अंगद तथा सुग्रीव ने कुंभकर्ण पर पहाड़ उखाड़कर फेंक दिये। मगर वे कुंभकर्ण की जरा भी हानि नहीं कर पाये। कुंभकर्ण ने सुग्रीव पर अपना त्रिशूल फेंका। हनुमान ने बीच में ही उसे पकड़कर तोड़कर फेंक दिया। इसे देख वानर परमानंदित हुए और सब ने सिंहनाद किये। उस समय कुंभकर्ण ने एक पर्वत शिखर फेंककर सुग्रीव को बेहोश कर दिया। तब बेहोश में पड़े सुग्रीव को कुंभकर्ण अपने कंधों पर उठाकर ले गया। उसने सोचा कि सुग्रीव का अंत करने पर राम और लक्ष्मण के साथ वानर सेना भी उसके अधीन हो जाएगी, यह सोचकर वह सुग्रीव को अपने कंधे पर उठाकर लंका के भीतर चला गया।

इस घटना को देखकर भी हनुमान डरा नहीं, उसका यह विश्वास था कि होश में आने पर सुग्रीव अपनी रक्षा कर सकता है। इसलिए वह वानरों को हिम्मत बंधाते हुए युद्ध क्षेत्र में ही रह गया।

२७. राम और लक्ष्मण की बेहोशी

वानरों को गाजर-मूली की भांति खाने लगा। तब लक्ष्मण ने आगे बढ़कर उस पर बाणों की वर्षा की। कुंभकर्ण ने उसकी परवाह नहीं की और वह लक्ष्मण को छोड़ राम पर आक्रमण करने गया।

रामचन्द्रजी ने उससे कहा–"कुंभकर्ण! शायद तुमने इंद्र को हराया होगा! पर अच्छी तरह से याद रखो कि मैं इंद्र नहीं हूँ, रामचन्द्र हूँ। पल भर में तुम्हारा वध कर डालूंगा।"

"रामचन्द्र! मैं न विराध हूँ, न वाली या मारीच ही हूँ। मैं कुंभकर्ण हूँ! तुम मुझ पर अपना पराक्रम दिखाओ, तब मैं तुम्हें खा डालूंगा।" कुंभकर्ण ने रामचन्द्रजी से कहा।

रामचन्द्रजी ने सालवृक्षों को भेधने तथा वाली का वध करने जिन बाणों का प्रयोग किया था, उन्हीं बाणों का प्रयोग कुंभकर्ण पर किया। मगर वे बाण कुंभकर्ण की कोई हानि नहीं कर पाये। इस पर रामचन्द्रजी ने कुपित होकर कुंभकर्ण पर वायव्यास्त्र का प्रयोग किया। तब क्या हुआ, कुंभकर्ण का हाथ गदा समेत टूटकर नीचे गिर पड़ा।

इसके बावजूद भी कुंभकर्ण जोर से हुंकार कर उठा। अपने दूसरे हाथ से एक विशाल वृक्ष को उखाड़कर रामचन्द्रजी

हनुमान की कल्पना के अनुसार सुग्रीव होश में आया, उसने देखा कि वह कुंभकर्ण के कंधे पर है। साथ ही उसे लंका नगर के पथ दिखाई दिये। उसने उसी वक़्त कुंभकर्ण की नाक और कान दाँतों से काट डाला। इस पर कुंभकर्ण के कान और नाक से खून बहने लगा। उसने क्रोध में आकर सुग्रीव को ज़मीन पर पटक दिया और उसे लात मारा। पर सुग्रीव ने इसकी परवाह नहीं की, बल्कि आकाश में उड़कर रामचन्द्रजी से जा मिला।

सुग्रीव के बचकर भागते ही कुंभकर्ण फिर से युद्ध क्षेत्र में लौट आया और

पर टूट पड़ा। तब रामचन्द्रजी ने इंद्रास्त्र का प्रयोग करके कुंभकर्ण के दूसरे हाथ को भी काट डाला। फिर भी कुंभकर्ण रामचन्द्रजी पर हमला करने गया। इस पर रामचन्द्रजी ने उसके दोनों पैर काट डाले और अंत में उसका सिर भी काट डाला।

कुंभकर्ण की मौत पर राक्षस अत्यंत दुखी हो ऊँचे स्वर में रो पड़े। वे रामचन्द्रजी को देख भय के मारे कांप उठे। वानरों ने रामचन्द्रजी को घेरकर उनकी पूजा की।

कुंभकर्ण का रामचन्द्रजी के हाथों में मरने का समाचार राक्षसों के द्वारा रावण को मिल गया। यह खबर सुनते ही रावण बेहोश हो गया। कुंभकर्ण के पुत्र देवांतक, नरांतक, त्रिशिर तथा अतिकाय भी दहाड़े मारकर रो पड़े। इसी प्रकार कुंभकर्ण के भाई महोदर तथा महापार्श्व भी रो उठे। सारा वातावरण शोकाकुल हो गया।

होश में आने पर रावण यह सोचकर डर गया कि अब लंका वानरों के वश में हो जाएगा। उसे लगा कि वह अपने राज्य से ही वंचित हो गया है। सीता की बात तो कहने की आवश्यकता ही नहीं है। उसने यह निश्चय कर लिया कि रामचन्द्रजी का वध करके अपने भाई का बदला लेना है, वरना उसे भी युद्ध में प्राण देने हैं। इस बात का भी उसे पश्चात्ताप होने लगा कि अपने छोटे भाई विभीषण की सलाह न मानकर उसे भी खो बैठा है।

रावण को दुखी देख त्रिशिर ने कहा– "तीनों लोकों पर विजय प्राप्त कर सकने वाले आप हताश क्यों हो रहे हैं? क्या आप अपने बल और पराक्रम को ही भूल बैठे? मुझे युद्ध भूमि में भेज दीजिए। मैं राम का वध कर लौट आऊंगा!"

यह बात सुनकर देवांतक, नरांतक तथा अतिकाय भी युद्ध क्षेत्र में जाने को उत्साह

दिखाने लगे। रावण उनकी बातों पर प्रसन्न हो उठा। उनके साथ आलिंगन करके उन्हें युद्ध भूमि में भेज दिया।

इस बार फिर वानरों तथा राक्षसों के बीच युद्ध हुआ। राक्षस वीर नरांतक वानरों के बीच खलबली मचाने लगा। इसे देख सुग्रीव ने अंगद को आदेश दिया कि वह नरांतक का वध कर डाले। अंगद ने थोड़ी देर नरांतक के साथ युद्ध करके अंत में उसको मार डाला।

इस दृश्य को देख त्रिशिर, महोदर और देवांतक भी अंगद पर टूट पड़े। अंगद साहसपूर्वक तीनों का सामना कर रहा था, तब हनुमान उसकी मदद के लिए आ पहुंचा। उसने एक ही मुक्के के द्वारा देवांतक को ठण्डा कर दिया। इसी प्रकार अंगद की मदद करने आकर नील ने महोदर की जान ले ली।

महापार्श्व के साथ ऋषण ने भयंकर युद्ध करके अंत में उसका वध कर डाला। महापार्श्व के मरते ही राक्षसों की हिम्मत पस्त हो गई और वे हथियार डालकर भागने लगे।

युद्ध में राक्षस वीरों की मृत्यु का समाचार सुनकर अतिकाय आगे बढ़ा। छोटे पर्वत की भाँति आगे बढ़नेवाले अतिकाय को देख रामचन्द्रजी ने विभीषण से पूछा—"यह राक्षस वीर कौन है?"

"यह धान्यमाली के गर्भ से उत्पन्न रावण का पुत्र है। नाम इसका अतिकाय है। प्रताप में रावण की बराबरी करनेवाला है। इसने ब्रह्मदेव के अनुग्रह से दिव्यास्त्र प्राप्त किया, साथ ही यह वरदान भी पाया कि देवता एवं दानवों के द्वारा इसकी मृत्यु न होगी। उसका कवच एवं रथ भी ब्रह्मा के द्वारा प्राप्त हुए हैं। इनकी मदद से उसने अनेक बार देवता तथा दानवों को पराजित कर राक्षसों की रक्षा की है। यदि शीघ्र इसका वध न किया जाय तो वानरों की अपार क्षति होगी।" विभीषण ने रामचन्द्र को समझाया।

इस बीच वानर सेना के साथ युद्ध करनेवाले अतिकाय का वानर वीर कुमुद, द्विविद, मैंद, नील तथा शरभ ने सामना किया, मगर ये सब मिलकर भी उसकी कोई हानि न कर पाये, उल्टे उसके हाथों में बुरी तरह से घायल हो गये और युद्धभूमि से हट गये।

इसके बाद अतिकाय सीधे रामचन्द्रजी के पास पहुँचा और गरज कर बोला–"मैं भागनेवालों के साथ युद्ध नहीं करूंगा। मेरे साथ युद्ध करने का उत्साह दिखानेवाले कौन हैं?"

यह बात सुनकर लक्ष्मण क्रोध में आ गया, अतिकाय के सामने आकर धनुष का टंकार किया। उसे देख अतिकाय बोला–"लक्ष्मण, तुम तो छोटे हो! तुम्हारा पराक्रम ही क्या है? मेरे साथ किस मुंह को लेकर युद्ध करने आये? नाहक़ क्यों मरना चाहते हो? मेरे सामने से हट जाओ।"

"सुनो, वीरता बातों में नहीं, कार्य में दिखानी चाहिए। तुम अपनी आत्मस्तुति करना छोड़कर अपना पराक्रम मुझ पर दिखाओ।" लक्ष्मण ने कहा।

इसके बाद दोनों ने धनुष-युद्ध प्रारंभ किया। लक्ष्मण के हाथों से बाणों का प्रहार खाने के बाद अतिकाय के मन में लक्ष्मण के प्रति आदर का भाव उत्पन्न हुआ। तब उसने उत्साहपूर्वक युद्ध किया। दोनों ने परस्पर दिव्य अस्त्रों का प्रयोग किया। अतिकाय के बाणों ने लक्ष्मण को व्यथित किया, पर लक्ष्मण के बाण अतिकाय के कवच को भेद न पाये। इसलिए लक्ष्मण ने उसपर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया। अतिकाय ने उसे रोकने का प्रयत्न किया, किंतु वह सफल न हो पाया। परिणामस्वरूप उस अस्त्र ने अतिकाय का सर काट डाला।

अतिकाय की मृत्यु के साथ राक्षसों का दुख उमड़ पड़ा। यह समाचार सुनने पर रावण भी आश्चर्य चकित रह गया।

क्योंकि राक्षसों में एक एक करके सभी विख्यात वीर राम और लक्ष्मण के हाथों में मरे जा रहे हैं। वानरों की शक्ति का सही मूल्यांकन न कर पाना ही वास्तव में उसकी भूल थी।

अपने पिता को चिंतामग्न देख मेघनाद ने समझाया–"मेरे जिंदा रहते आप क्यों दुखी होते हैं? मेरे बाणों की चोट खाकर आज तक कोई भी प्राणों के साथ बच न पाया। मैं राम और लक्ष्मण के प्राण ले लूंगा। मैं अभी युद्ध भूमि में जा रहा हूँ।"

मेघनाद ने अपने पिता की अनुमति ली, तब उत्तम नस्ल के खच्चरों से जुते रथ पर सवार हो गया। मेघनाद को युद्ध भूमि में जाते देख विभिन्न प्रकार के आयुध धारण कर कई राक्षस वीर प्रसन्नतापूर्वक उसके साथ चल पड़े।

मेघनाद ने युद्ध भूमि में प्रवेश करके दिव्य रथ प्राप्त करने के लिए होम करने का निश्चय किया और राक्षसों को अपने चारों तरफ़ पहरा देने की आज्ञा दी। इसके बाद उसने मंत्रों का उच्चारण करते अग्नि में होम किया। अग्नि बिना धूम्र के बड़ी ज्वालाओं के साथ धधक उठी।

इसके उपरांत मेघनाद ने ब्रह्मास्त्र का जाप किया, उस अस्त्र के साथ अपने धनुष, रथ तथा अन्य आयुधों को मंत्रपूरित किया। होम के समाप्त होते ही मेघनाद अपने रथ, आयुध तथा रथ के सारथी के साथ आसमान में अंतर्धान हो गया।

राक्षस सेना घोड़ों तथा रथों के साथ युद्ध भूमि की ओर चल पड़ी। राक्षसों ने अनेक प्रकार के आयुधों को लेकर वानरों के साथ युद्ध किया। मेघनाद ने उन्हें प्रोत्साहित किया। इसके बाद वह भी युद्ध क्षेत्र में पहुँचा। वह एक एक वार के साथ पाँच-छे वानरों का वध करने लगा। उसने साधारण वानरों के साथ प्रमुख वानर योद्धाओं को भी सताना प्रारंभ किया। गंधमादन, नल, मेंद, गज, सुग्रीव,

ऋषभ, अंगद तथा द्विविद भी उसके बाणों के बुरी तरह से शिकार हुए। मगर प्रयत्न करके भी अदृश्य रूप में स्थित मेघनाद को वे देख न पाये।

मेघनाद के बाण रामचन्द्र तथा लक्ष्मण को भी जा लगे। इस पर रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण से कहा–"मेघनाद अदृश्य रहकर युद्ध कर रहा है। इसलिए हम उसका वध नहीं कर पायेंगे। यदि हम ऐसा अभिनय करे कि उसके बाणों की चोट खाकर बेहोश हो गये हैं, तब वह प्रसन्न हो लंका नगर को लौट जाएगा।

इसी योजना के अनुसार राम और लक्ष्मण बाणों की चोट खाकर गिर पड़े। मेघनाद प्रसन्नतापूर्वक सिंहनाद करके लंका को लौट गया।

मेघनाद ने राम और लक्ष्मण पर ब्रह्मास्त्र का प्रयोग किया था। हनुमान ने विभीषण के सामने यह इच्छा प्रगट की कि ब्रह्मास्त्र के द्वारा कितने वानर वीर केवल उसकी महानता के सामने आवद्ध हो गये हैं और कितने लोग सचमुच मर गये हैं, इसे हमें जान लेना होगा।

इसके बाद हनुमान तथा विभीषण एक-एक जलती लकड़ी को लेकर सारे रणक्षेत्र को ढूंढ़ने लगे। उन्हें जांबवान जीवित दिखाई पड़ा। विभीषण ने उस वृद्ध वीर का परामर्श करके पूछा–"तुम प्राणों के साथ जीवित हो न?" वास्तव में जांबवान अपनी दृष्टि खो बैठा था। उसने विभीषण से पूछा–"वीर हनुमान जिंदा है न?"

विभीषण ने विस्मय में आकर जांबवान से पूछा–"तुम रामचन्द्रजी तथा लक्ष्मण का समाचार जानने के बदले पहले हनुमान के कुशल-क्षेम क्यों जानना चाहते हो?"

"बेटा विभीषण! हनुमान जीवित रहकर बाक़ी समस्त वानर सेना भले ही मर जाय, हमारी कोई हानि न होगी। यदि वह मर जाय और सारी वानर सेना जीवित रही तो हम सब लोग मरे हुए

लोगों के बराबर हैं।" जांबवान ने जवाब दिया।

वृद्ध नेता जांबवान के मुँह से ये शब्द सुनने पर हनुमान आगे आया, जांबवान के चरणों का स्पर्श करके प्रणाम किया।

इस पर जांबवान ने हनुमान से कहा– "बेटा, अब सारे वानरों की रक्षा तुम्हीं को करनी है! यह काम तुम्हारे सिवा किसी के द्वारा संभव नहीं है।"

इसके बाद रामचन्द्र तथा लक्ष्मण की बेहोशी दूर करने के लिए जांबवान ने हनुमान को एक उपाय बताया :

"हनुमान, तुम्हें समुद्र के ऊपर से हिमालयों में जाना होगा। वहाँ पर तुम्हें अत्यंत ही ऊँचे शिखर कांचन और कैलास दिखाई देंगे। उन दोनों शिखरों के बीच एक औषधोंवाला पर्वत है। उसके शिखर पर चार दिव्य औषधियाँ हैं। वे अपूर्व ढंग से प्रकाशित होते दिखाई देंगी। उनके नाम हैं–विशल्यकरणी, मृतसंजीवनी, सौर्णकरणी तथा संधानकरणी हैं। तुम शीघ्र उन चार औषधों को लेते आओ। उनके द्वारा वानरों को जीवित करके उन्हें स्वस्थ बनायेंगे।

जांबवान के मुंह से ये शब्द सुनकर हनुमान तत्काल ही वायुमार्ग से हिमालयों की ओर चल पड़ा। वह समुद्र, पर्वत, नदी तथा जंगलों को पार करते हिमालयों की ओर अमित वेग के साथ आगे बढ़ा।

हिमालयों में प्रवेश करते ही हनुमान को अत्यंत ऊँचे शिखर तथा आश्रम दिखाई दिये। उसने ब्रह्मकोश, कैलास पर्वत, इंद्र की तपोभूमि, रुद्रबाण का मोक्षस्थान, हयग्रीवक्षेत्र, ब्रह्मकपाल इत्यादि प्रदेशों को देखा। साथ ही उसने उन स्थानों को भी देखा जहाँ पर ब्रह्मा ने इंद्र को वज्र प्रदान किया था। कुबेर का स्थान, ब्रह्मासन, शिवधनु का क्षेत्र तथा पाताल बिल भी उसे दिखाई दिये। अंत में उसे कैलास पर्वत तथा ऋषभ पर्वत के बीच औषध पर्वत भी दिखाई दिया। उस पर औषधियाँ प्रकाशमान थीं।

पन्ना का त्याग

राजस्थान के सुप्रसिद्ध राज्य मेवाड़ पर १६ वीं शती पर राणा सांगा शासन करते थे। वे बड़े ही उदार तथा शूर थे

दुर्भाग्य से उनके पुत्र उनके समान बन न पाये। रत्न नामक राजकुमार एक दूसरे राजकुमार के साथ युद्ध करके स्वर्गवासी बना। दूसरा राजकुमार विक्रमजित अपने पिता की मृत्यु के बाद राजा बना और भोग लालसी बन उसने अपने धन तथा समय का दुरुपयोग किया।
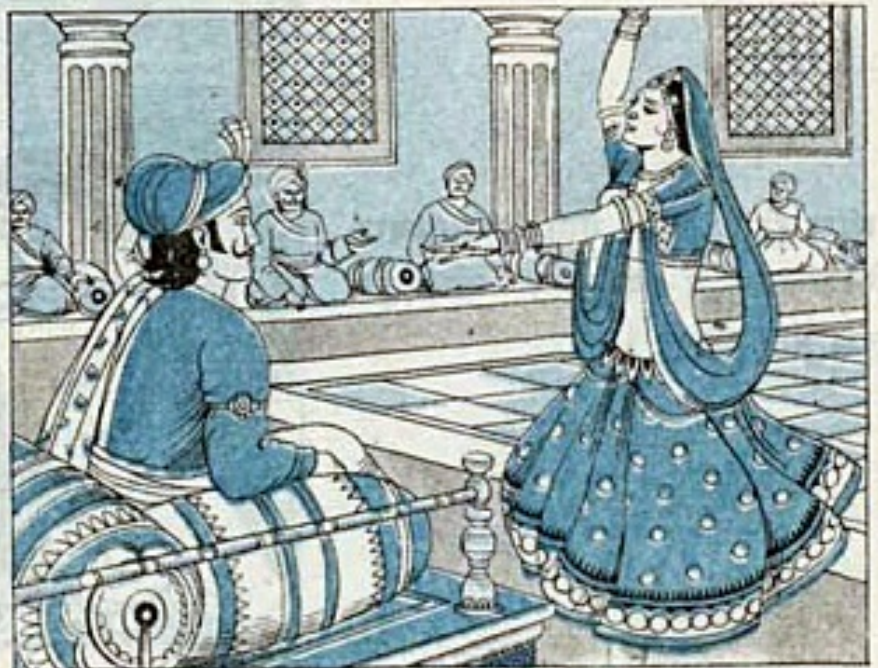
मेवाड़ में अराजकता फैल गई। दिल्ली के मुगल बादशाह उस राज्य को हड़पने की सोचने लगे। उस हालत में कुछ प्रमुख दरबारियों ने बनवीर को अपना सरदार बनाया और उसकी मदद से विक्रमजित को गद्दी से उतारने का षड़यंत्र रचा। बनवीर असाधारण वीर पृथ्वीराज का नाजायज पुत्र था।

बनवीर ने अचानक विक्रमजित पर हमला किया। विक्रमजित अपनी आत्मरक्षा न कर पाया और मृत्यु को प्राप्त हुआ। इस पर उसके मित्र भाग खड़े हुए।

शीघ्र ही राजा की मृत्यु का समाचार राजमहल में पहुँचा। राजमहल दुख में डूब गया।

विक्रमजित का पुत्र उदय छोटा-सा बालक था जो पन्ना नामक एक विश्वासपात्र धाई की देखरेख में पल रहा था। राजकुमार की उम्र का ही पन्ना के एक पुत्र था। पन्ना अंतःपुर में ही उन दोनों का पालन-पोषण करती थी।

राजा की हत्या का समाचार राजमहल के एक सेवक के द्वारा पन्ना को मिला। वह चकित रह गई। उसे यह भी मालूम हुआ कि बनवीर राजकुमार का अंत करने अंतःपुर में चला आ रहा है।

विलंब करने से खतरा था। पन्ना ने उस सेवक को अपनी योजना अमल करने को मनवाया। राजमहल के कूड़ा-करकट को बाहर ले जानेवाली टोकरी में राजकुमार को लिटाकर वह सेवक उसे क़िले से बाहर ले गया।

फिर भी पन्ना जानती थी कि राजद्रोही बनवीर राजकुमार का अंत किये बिना चैन की नींद नहीं सोयेगा। पन्ना ने अपने पुत्र को राजकुमार की शय्या पर लिटाया।

पन्ना ने ज्योंही यह काम किया, त्योंही बनवीर अपने हाथ में तलवार लिये वहाँ पर पहुँचा। उसने गरज कर पन्ना से पूछा–"बताओ, राजकुमार कहाँ है? जल्दी बताओ।"

पन्ना ने राजकुमार की रक्षा करने का दृढ़ संकल्प किया था। अगर वह यह बता देती कि राजकुमार बचकर भाग गया है तो वह गुप्तचरों को भेज कर उसका पता लगायेगा। इसलिए उसने राजकुमार की शय्या पर लेटे अपने पुत्र की ओर इशारा किया। बनवीर ने उस बालक की छाती में अपनी तलवार भोंक दी।

राज सेवक नदी तट पर पन्ना के इंतज़ार में बैठा था। शीघ्र ही पन्ना उससे जा मिली। दोनों कमलमेर के राजमहल में गये। वही राजकुमार उदयसिंह नाम से बड़ा हुआ। उसने बनवीर को मेवाड़ से भगा दिया। इतिहास में पन्ना का त्याग अमर हो गया!

कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता

कहानी का सुंदर शीर्षक देकर रु. २५ जीतिए!

?

एक गाँव में एक कंजूस था, वह खाता-पीता कुछ न था और दूसरों के ख़र्च करते देख न पाता था। उसकी इस आदत के कारण उसका पुत्र बड़ा परेशान था। उसके बाल बढ़ गये थे। वह बाल बनवाना चाहता तो उसका पिता पैसे देने को तैयार न था। उसके दोस्त 'आवारा' कहकर उसका मजाक़ उड़ाया करते थे।

एक दिन पिछवाड़े के नारियल के पेड़ से एक सूखा नारियल गिर पड़ा। कंजूस के पुत्र की नजर उस पर पड़ी। उसने नारियल ले जाकर नाई से कहा—"देखो भाई, यह नारियल लेकर मेरे बाल बनवा दो।"

नाई कंजूस का व्यवहार जानता था। इसलिए उसने नारियल लेकर कंजूस के पुत्र के बाल बनाये। अपने पुत्र को बाल बनवाये देख कंजूस ने पूछा—"बेटा, तुमने बाल बनाये, पैसे कहाँ से आ गये?"

"बाबूजी! पेड़ से नारियल गिरा था। नाई को देकर बाल बनवाया।" पुत्र ने जवाब दिया।

"ओह! नारियल को बेच देते तो चवन्नी मिल जाती। भगवान, मेरा घर लुट रहा है। अब मुझे भी किफ़ायत क्यों करनी है?" यों कहकर कंजूस ने बीस साल से पेटी में सुरक्षित रखा हुआ कंबल निकाला और अपने पुत्र को धमकाया—"आज से रात के वक्त मैं इस कंबल को ओढ़कर सो जाऊँगा; देखते रह जाओ बेटा!"

★ ★ ★

उपर्युक्त कहानी के लिए बढ़िया शीर्षक कार्ड पर लिखकर, निम्न लिखित पते पर भेजें—"कहानी शीर्षक-प्रतियोगिता", चन्दामामा, २ & ३, आर्काट रोड़, मद्रास-६०००२६

कार्ड हमें जनवरी १० तक प्राप्त हों और उसमें फोटो-परिचयोक्तियाँन हों। इसके परिणाम चन्दामामा के मार्च '७७ के अंक में घोषित किये जायेंगे।

नवंबर मास की प्रतियोगिता का परिणाम: "याद महंगी पड़ी"

पुरस्कृत व्यक्ति: कु. अनिता, १-८-४८ चिक्कडपल्लि, हैदराबाद-२०

फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता :: पुरस्कार २५)

पुरस्कृत परिचयोक्तियाँ मार्च १९७७ के अंक में प्रकाशित की जायेंगी।

S. B. Takalkar

★

Nivas Jadhav

★ उपर्युक्त फोटो की सही परिचयोक्तियाँ दो-तीन शब्दों की हों और परस्पर संबंधित हों।

★ जनवरी १० तक परिचयोक्तियाँ प्राप्त होनी चाहिए, उसके बाद प्राप्त होनेवाली परिचयोक्तियों पर विचार नहीं किया जाएगा।

★ अत्युत्तम परिचयोक्ति को (दोनों परिचयोक्तियों को मिलाकर) २५ रु. का पुरस्कार दिया जाएगा।

★ दोनों परिचयोक्तियाँ कार्ड पर लिखकर (परिचयोक्तियों से भिन्न बातें उसमें न लिखें) निम्नलिखित पते पर भेजें: चन्दामामा फोटो-परिचयोक्ति-प्रतियोगिता, मद्रास-२६

नवम्बर के फोटो-परिणाम

प्रथम फोटो: **सच्चे मन से करे जो पूजा!**

द्वितीय फोटो: **मन मंदिर है न द्वार कोई दूजा!!**

प्रेषक: सुशील कुमार १३/१, डब्ल्यू. ई. सी. लाइन्स, नई दिल्ली-१०

पुरस्कार की राशि रु. २५ इस महीने के अंत तक भेजी जाएगी।

Printed by B. V. REDDI at Prasad Process Pvt. Ltd., and Published by B. VISWANATHA REDDI for CHANDAMAMA CHILDREN'S TRUST FUND (Prop. of Chandamama Publications) 2 & 3, Arcot Road, Madras 600 026; Controlling Editor: NAGI REDDI

चन्दामामा के ग्राहकों को सूचना

यदि आप अपना पता बदल रहे हों, तो पांचवीं तारीख से पहिले ही अपनी ग्राहक-संख्या के साथ, अपना नया पता सूचित कीजिये। यदि विलम्ब किया गया, तो अगले मास तक हम नये पते पर 'चन्दामामा' न भेज सकेंगे।

आपके सहयोग की आशा है।

डाल्टन एजन्सीस, मद्रास-६०० ०२६

सफलता के दस वर्ष

राष्ट्र की प्रगति के कदम

एक विकासशील आत्म-निर्भर अर्थव्यवस्था की ओर

खाद्यान्न की अभूतपूर्व पैदावार — 11.4 करोड़ मी. टन
औद्योगिक उत्पादन में 30 प्रतिशत वृद्धि ,
बिजली उत्पादन में 100 प्रतिशत वृद्धि ,
एक ही वर्ष में निर्यात रु० 3,300 करोड़ से अधिक ,

अनुशासित जीवन की ओर

समय की पाबन्दी और कुशलता में सुधार ,
सभी ओर भरपूर प्रयास और चमत्कारी परिणाम ,
समाज के सभी वर्गों में शान्ति और सौमनस्य,

और अधिकाधिक एकता की ओर

"लगभग हर साल कोई न कोई चुनौती और संकट सामने आया ....
हमें विदेशी हमले से अपने देश की रक्षा करनी पड़ी ....
क्षेत्रीय तनावों को प्रेमभाव और मेल जोल से कम किया गया .
हमने निजी उद्यम को समाप्त किए बिना सरकार द्वारा शुरू किए गए विकास का एक बड़ा कार्यक्रम हाथ में लिया है ।"

— इन्दिरा गांधी

CHANDAMAMA (Hindi) JANUARY 1977 Regd. No. M. 5452

मित्र-संप्राप्ति